R.N.I. No. 2321/57
फरवरी 2016
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18
अंक 1

तपोभूमि
मासिक

महान कर्मयोगी, वैदिक विद्वान, ब्रह्मचर्य की प्रतिमूर्ति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्रद्धेय आचार्य बल्देव जी महाराज

(जिनका दु:खद निधन 28 जनवरी 2016 को हो गया)

कर्मयोगी पूज्य आचार्य श्री बलदेव जी महाराज का महाप्रयाण
(आर्य जगत् में दौड़ी शोक की लहर)

प्रातः स्मरणीय महान कर्मयोगी तपस्या की प्रतिमूर्ति अनन्य ऋषिभक्त वैदिक संस्कृति के पुरोधा वर्तमान में आर्य जगत् के श्रद्धा के पात्र पूज्य आचार्य श्री बलदेव जी महाराज का दुःखद निधन 28 जनवरी प्रातः 4 बजे श्रीमद् दयानन्द मठ रोहतक हरियाणा में हो गया। सारे आर्य जगत् में शोक की लहर दौड़ गई। ऐसा प्रतीत होता था, मानो सारा आर्य जगत् आज अनाथ हो गया। यह समाचार विद्युत गति से देश विदेशों में छा गया। 29 जनवरी को दोपहर 1 बजे का समय अन्त्येष्टि के लिये निर्धारित किया गया था। पूज्य आचार्य जी का पार्थिव शरीर 28 जनवरी को जनता के दर्शनार्थ रख दिया गया था। 28 जनवरी से लेकर 29 जनवरी 12 बजे तक पार्थिव शरीर के दर्शन के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। प्रशासन को व्यवस्था करने में पसीने छूटने लगे। पर लोगों की श्रद्धा ऐसी उमड़ रही थी कि दर्शनार्थियों की पंक्ति समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थी। देश विदेश से साधु, संन्यासी, वानप्रस्थी, गुरुकुलों के ब्रह्मचारी, आचार्य, सभी दलों के राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी इत्यादि सभी वर्गों के प्रबुद्ध जनों का अपार मेला लगा रहा। अन्त में समय न होने के कारण व्यवस्थापकों ने उपस्थित जनता से करबद्ध निवेदन किया कि अब पार्थिव शरीर के दर्शन होना समयाभाव होने के कारण सम्भव नहीं है। अतः अब केवल भावनात्मक श्रद्धांजलि ही आप लोग दे दें। ठीक 1 30 बजे गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने उनके पार्थिव शरीर को स्नान कराया, उसके बाद अन्त्येष्टि स्थल के लिये शव यात्रा प्रारम्भ हुई। जनता के समूह ने 'आचार्य बलदेव अमर रहें', 'जब तक सूरज चाँद रहेगा आचार्य जी का नाम अमर रहेगा' आदि के गगनचुंभी नारों से अपने हृदयों से उमड़ती हुई श्रद्धा के सागर का प्रकाशन किया। धीरे-धीरे शव यात्रा अन्त्येष्टि स्थल तक पहुँची। कालवा गुरुकुल के स्नातक सर्व श्री ज्ञानेश्वर जी, श्री अर्जुनदेव जी, श्री सोमानन्द जी, श्री चेतन्य वैश्वानर, श्री आचार्य ऋषिपाल, ब्रह्मचारी आत्मप्रकाश, स्वामी मुक्तानन्द जी, आचार्य अखिलेश्वर जी, आचार्य राजेन्द्र जी, स्वामी गणेशानन्द जी, आचार्य सत्यजित् जी, स्वामी ऋतस्पति जी आदि के नेतृत्व में अन्त्येष्टि का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर सार्वदेशिक सभा के उपप्रधान श्री सुरेशचन्द्र जी अग्रवाल अपने सभी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारियों के साथ उपस्थित थे। हरियाणा आर्य प्रतिनिध सभा के प्रधान श्रद्धेय आचार्य विजयपाल जी व सभा के समस्त पदाधिकारी सम्पूर्ण व्यवस्थाओं को देख रहे थे। ठीक 1 बजे श्रद्धेय आचार्य जी के अनन्य शिष्य विश्वप्रसिद्ध सन्त स्वामी रामदेव जी महाराज माननीय मुख्यमंत्री हरियाणा के श्री मनोहरलाल खट्टर व उनकी मंत्री मण्डल के सहयोगियों के साथ पधारे। पतंजलि पीठ से श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी व स्वामी मुक्तानन्द जी, डॉ0 यशदेव शास्त्री भी उपस्थित हुए। स्वामी रामदेव जी महाराज के आने पर अन्त्येष्टि का कार्य विधिवत् वैदिक धर्म के अनुसार सम्पन्न हुआ। अन्त्येष्टि के लिये प्रचुर मात्रा में चन्दन की समिधा, घी आदि उपस्थित

शेष पृष्ठ सं0 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–62 | संवत्सर 2072 | फरवरी 2016 | अंक 1

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

फरवरी 2016

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्द: 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–7
वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम विषयक शंका–समाधान	–उदयनाचार्य	8–10
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	11–14
माता की पुकार	–ओंकारसिंह विभाकर	15–16
उपोद्घात	–टी. एल. वासवानी	17–20
मन को अपने अधीन रखना चाहिए	–बाबू सूरजभान वकील	21–24
ब्रह्मचर्य–विज्ञान	–जगननारायण देव	25–28
ब्रह्मचर्य	–पण्डित सत्यव्रत	29–32
देशभक्ति के प्रेरक कवित्त	–रोहित आर्य	33–34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/–   पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

दश सिर और मुखोंवाला ब्राह्मण

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोम प्रथमः पपौ स चकाराररसं विषम्।। –अथर्व0 4.6.1

शब्दार्थ:–

(प्रथमः) प्रथम, श्रेष्ठ कोटि का (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (जज्ञे) उत्पन्न हुआ था, (दशशीर्षः) जिसके दस सिर थे, (दशास्यः) दस मुख थे। (स प्रथमः) उस प्रथम ब्राह्मण ने (सोमं पपौ) सोम पान कर लिया, उससे (सः) उसने (विषम्) विष को (अरसं चकार) निष्प्रभाव कर दिया।

भावार्थ:–

एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है, विविध विद्याओं का वेत्ता उत्पन्न हुआ है। विलक्षणता यह है कि उसके दस सिर हैं और दस मुख हैं। उसके दस मस्तिष्क हैं, कोई दस मस्तिष्कों से जितना विवेक और विज्ञान का आविष्कार कर सकता है, उतना वह एक मस्तिष्क से कर लेता है, अतः उसे दस सिरोंवाला कहा गया है। फिर सिर में केवल मस्तिष्क ही नहीं आता है, आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा रूप ज्ञानेन्द्रियाँ भी आ जाती हैं। ये भी दस सिरों में मिलकर जितनी होती हैं, अर्थात् 20 आँखें, 20 कान, 20 नासाछिद्र, 10 जिह्वाएँ आदि इस ब्राह्मण की हैं। इतनी-इतनी आँखों आदि की शक्ति इसके अन्दर है। इतने साधनों से जितना ज्ञान सम्पादित किया जा सकता है, वह इसके अन्दर है। साथ ही मुख भी दस हैं, दस मुखों में भाषण करने के लिए जिह्वाएँ भी दस हैं। अतः जितना अधिक ज्ञान इसके अन्दर भरा है, उस सबको वाणी से प्रकट करने की शक्ति भी इसके अन्दर है। इतना ज्ञानवान् और वाग्मी होते हुए भी उसके अन्दर विष भी भरा है। यह है हिंसा, आतंकवाद, असत्य, अब्रह्मचर्य, अन्याय आदि का विष। उस विष के कारण इसका अनन्त ज्ञान और इसकी अनन्त भाषणकला भी फीकी पड़ गयी है। उस विष को यह अपने अन्दर से कैसे निष्कासित करे? यह लो, एक उपाय अनुभवी मेधावियों ने इसे बता दिया है। वह है सोमरस का पान। वह सोमरस है ईश्वर-विश्वास। ईश्वर-विश्वास का सोमरस पीते ही इसका सब विष, इसके सब दुर्गुण, सब दुर्व्यसन मन से बाहर निकल गये हैं और मन स्वस्थ एवं पवित्र हो गया है। आओ, हम भी इस सोमरस का पान करके निर्विष हो जाएँ।

भाइयो! एक और ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है, वह है आयुर्वेद के ज्ञान-विज्ञान का पारदर्शी विद्वान्। उसने आयुर्वेद के सब अंगों का पूर्ण ज्ञान अर्जित किया हुआ है। वह इस ज्ञान के कारण प्रथम, श्रेष्ठ और पूजित माना जाता है। वह भी दशशीर्ष है, उसके भी दस सिर हैं, दस प्राण ही उसके दस सिर हैं-प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। ये शरीर के विभिन्न अंगों तथा संस्थानों में रहते हुए उनका नियन्त्रण करते हैं। इस आयुर्वेदविद् ब्राह्मण के मुख भी दस हैं। ये दस मुख हैं पाँच यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, तथा पाँच नियम-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान। इन प्राणों, यमों एवं नियमों का अभ्यासी महाबली शरीर भी विषयुक्त हो जाता है, नाना रोगों से घिर जाता है। तब आयुर्वेदज्ञ ब्राह्मण सोमरस का पान करता है। ❁❁❁

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

द्वादशः सर्गः

असत्यकृमिसंघातै विंषाक्तै र्जनजीवनम्।
तरुमूलं ननु जग्धं नाशं यातुमुपस्थितम्।। 134।।

मानव जीवनरूपी महान् वृक्ष का मूल असत्यरूपी विषाक्त कृमिसमूहों से खाया जाकर नाशोन्मुख हो रहा था।। 134।।

सुसंस्कारान् वरनयांच्छुभकर्मार्यसभ्यताम्।
घुणोपमाऽऽदन्नितरां प्रतीचीना कुसंस्कृतिः।। 135।।

पश्चिमी कुसंस्कृतिरूपी घुन उत्तम संस्कार, उत्तम नीति, शुभ कर्म एवं आर्य सभ्यता को नितान्त खोखला कर रहा था।। 135।।

देशकल्याणलालसा संजज्ञे स्वामिनस्स्वान्ते।
दुर्दशावीक्षणात् क्षिते र्विपरीताकृतेस्तीव्रा।। 136।।

स्वामीजी के हृदय में आर्यावर्त के दुर्दशामय विपरीत स्वरूप के दर्शन से देशकल्याण की तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई। थी।। 136।।

मस्तिष्कतन्तुजाले सा चित्रा गतिरभूद्देहे।
उत्तेजना मुनेर्भूतकारुण्योत्सोऽस्रवच्चित्तात्।। 137।।

उन दिनों स्वामीजी के मस्तिष्क के ज्ञानतंतुओं में अद्भुत गति, देह में उत्तेजना और चित्त में भूतदया के झरने उत्पन्न हो गये।। 137।।

सा यतिनृपतेरार्या वृत्ति र्हृदि संबभूव विरतिमयी।
सर्वस्वविसर्जनतोयात्मविकासं तदा चकमे।। 138।।

यतिसम्राट् के हृदय में श्रेष्ठ वैराग्यवृत्ति उत्पन्न हो गई थी, इस कारण उनका मन सर्वस्व त्याग द्वारा आत्मविकास चाह रहा था।। 138।।

यज्ञे परोपकारे स्वाहाकर्त्तुं य इह निजतनुमदात्।
वित्तं पुस्तकमंशुकमुन्नतमनसो नु किम्मूल्यम्।। 139।।

जिसने परोपकार के महायज्ञ में अपने शरीर तक को समर्पित कर दिया था, उस उन्नत उदार–हृदय ऋषि के लिये धन, पुस्तक और वस्त्र का क्या मूल्य था॥ 139॥

लोकेभ्यो व्यतरत्तत् समग्रभक्तावलीप्रणुतचरितः।
निजनिखिलवस्तुजातं योगी सत्यार्थवादरतः॥ 140॥

सत्यार्थवाद में रत, समग्र भक्तमण्डल से प्रशंसित–चरित्र योगी ने अपनी सभी वस्तुएँ जनता को समर्पित कर दीं॥ 140॥

रम्यं दीर्घं क्षौमं कांचनमुद्राद्वयं महाभाष्यम्।
गुरुचरणान्तिकमेषप्रेषितवांछ्रद्धया शिष्यः॥ 141॥

शिष्य दयानन्द ने श्रद्धासहित श्री गुरुचरणों में एक सुन्दर, दुशाला, दो स्वर्णमुद्रा तथा महाभाष्य किसी व्यक्ति द्वारा भिजवा दिये॥ 141॥

श्रीकैलासस्वामी त्यजन्तमित्थं सकलमिमं प्रोचे।
किमिव विधातुं स्वामिन् भवताऽऽरब्धं तदाश्चर्यम्॥ 142॥

ऋषि जब इन वस्तुओं को त्याग रहे थे, तब पं0 कैलाशस्वामी ने कहा कि–स्वामिन्, आप यह क्या कर रहे हैं, मुझे आश्चर्य हो रहा है॥ 142॥

विशदं विपक्षिनृणां प्रतीपमिच्छामि वक्तुमार्षज्ञः।
तद्दुशकं निजापेक्षिताक्षयो नु र्न यावदये॥ 143॥

ऋषि ने कहा–"ऋषियों के भावों को जानने वाला मैं अब विपक्षीवृन्द में साफ–साफ उनकी विरुद्ध बातों का भंडा फोड़ करना चाहता हूँ। जब तक कि मैं आवश्यकताओं को कम न कर दूं तब तक यह अशक्य है॥ 143॥

अथ योगीन्द्रो ललितं भस्मधवलितं विधाय देहं स्वम्।
कौपीनं स वसानस्तस्थौ स्वगिरं नियम्य पर्णगृहे॥ 144॥

इसके बाद योगीन्द्र ने अपने दिव्य सुन्दर देह को भस्म से धवलित करके कौपीन पहन लिया और मौन होकर झोंपड़ी में जा बैठे॥ 144॥

गर्जन्यो मठनायकसाधूनत्रासयद् विजयी।
स मुनिहरिः खलु सम्प्रति यतिलोकालस्यतो मौनी॥ 145॥

जो मुनिसिंह अपनी गर्जना से मठाधीशों एवं महन्तों को त्रसित कर देता था, वही विजयी वीरयति संप्रति संन्यासी साधुओं की अकर्मण्यता के कारण चुपचप एक ओर को आ बैठा है॥ 145॥

औदासीन्यकलंको मुनेर्मुखेन्दावलक्ष्यत वरमतेः।
ऋषिवंशजतनुजानामकर्मशीलत्वदोषदर्शनतः॥ 146॥

उत्कृष्ट बुद्धिशाली मुनिवर के मुखचन्द्र पर ऋषियों के वंशज पुत्रों की अकर्मण्यता के दोष–दर्शन

से उदासीनता की काली रेखा दीखने लगी॥ 146॥

मौनादृतं विशिष्टं निगमाद् येनाधिगतमिति कथं स यमी।
आकर्ण्य वेदनिन्दां भजेन्नु मौनं निनिन्द तद् भागवतम्॥ 147॥

कोई पंडित, स्वामीजी के समक्ष 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' यह श्लोक बोल रहा था। तब स्वामीजी वेदनिन्दा सुनकर मौन त्यागकर भागवत का खण्डन करने लगे। स्वामीजी ने 'मौनात् सत्यं विशिष्यते' की शिक्षा ली हुई थी। भला, उनसे उस समय चुप कैसे रहा जा सकता था॥ 147॥

संस्कृतवाचोपदिशन् सुकृती धर्मप्रचारमनाः।
जह्युतनुभवारोधसि मंन्त्रोगदीतिश्चचार मुक्तात्मा॥ 148।

पुण्यवान् मुक्तात्मा गंगा के किनारे धर्मप्रचार के उद्देश से संस्कृत भाषा में ही उपदेश देते हुए तथा ऋचाओं का गान करते हुए विचरने लगे॥ 148॥

अजमजरममरमीशंस्वान्ते संन्ध्यायतां हि पुण्यात्मनृणाम्।
मुक्तिस्तापत्रयतोजनुषां सा स्यादितीयमार्यागीतिः॥ 149॥

अजर, अमर, अजन्मा परमेश्वर को अंतकरण में ध्यान करते हुए पुण्यात्मा मनुष्यों को त्रिविधापयुक्त जन्ममरण से मुक्ति प्राप्त हो, यही 'आर्यागीति' है। अथवा यही इन महापुरुष दयानन्द का गान घोषणा है, जयनाद है॥ 149॥

भावसद्गुणसुन्दरी समलंकृता रसनन्दिनी सत्कवेः कवितेव सा रुचिरास्त्वलं विबुधप्रिया।
ब्रह्मवर्चसशालिनी मुनिहंसजीवनसत्कथा ब्रह्मदर्शनमंगला भवभूतिमुक्तिसुखोदया॥ 150॥

मुनिवर दयानन्द के जीवन की यह आदर्शकथा ब्रह्मवर्चस= सदाचारपालन तथा वेदाभ्यासजन्य तेज से देदीप्यमान है। यह ब्रह्म = जीव, ईश्वर और प्रकृति के सम्यक् प्रतिपादक होने से मंगलदायक है। सांसारिक अभ्युदय और मुक्ति के आनन्द प्रदान करने वाली है, उत्तम भाव एवं सद्गुणों से सुन्दर, अलंकारों से अलंकृत तथा रसों से रसदायिनी है। इसलिये यह रुचिर कथा सत्कवि की सुन्दर कविता की तरह विद्वानों को खूब ही प्रिय होगी॥ 150॥ ❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2015 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2016 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें।

–व्यवस्थापक

गतांक से आगे–

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम विषयक शंका–समाधान

लेखकः–उदयनाचार्य, निगम–नीडम्, पिडिचेड़, गज्वेल, मेदक, तेलंगाणा

यहाँ 'ऋषयः' के 'यतयः' विशेषण से प्रकृत आक्षेप तो परिहृत होता ही है, साथ में 'कोई भी ऋषि संन्यासी नहीं था' इसका भी परिहार हो जाता है। ऐसे ही महर्षि याज्ञवल्क्य के प्रसंग (बृ0 उप0 2.4.1; 4.5.2) से भी दोनों आक्षेपों का समाधान जानना चाहिए। "**तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः। अभिचक्राम वैदेही परिव्राजकरूपधृत्॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही। वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू। परिव्राजकरूपेण वैदेहीं समुपागमत्॥**" (रामायण अरण्य0 46.2.3)। ये सीतापहरण प्रसंग के श्लोक हैं। यहाँ स्पष्टरूप से रावण के बहूदक संन्यासी के रूप में आने का वर्णन है। जिसमें काषायवस्त्रों का भी उल्लेख है। रामायण के काल में भी भी संन्यासाश्रम का प्रचलन था, तभी तो रावण उसी वेष में आया और सीता को भी संन्यासी का भ्रम हो गया। फलतः सीता ने संन्यासी (रावण) को अन्दर बुलाकर ब्राह्मणवद् पाद्य, अर्घ्य आदि से आतिथ्य किया था (द्र0 वहीं–46.34.35)।

आक्षेप– संन्यासाश्रम का अन्तर्भाव वानप्रस्थ के अन्तर्गत ही हो सकता है। क्योंकि संन्यासी के जो भी धर्म, नियम, कर्तव्यादि होते हैं, वे सब वानप्रस्थी को भी करना पड़ता। अतः संन्यासाश्रम को एक पृथक् आश्रम मानने की आवश्यकता ही नहीं है।

समाधान– धर्मसूत्रों एवं स्मृतिग्रंथों में इन दोनों आश्रमों के लिए प्रायः समान धर्म, नियमादि का विधान किया गया है। इसीलिए बौधायन–धर्मसूत्र के भाष्यकार गोविन्दस्वामी के मन में भी उक्त आशंका उत्पन्न हुई थी।–"**वानप्रस्थसंन्यासभेदः किमर्थमाचार्यकृत इति असावेव द्रष्टव्यः** (बौ0 धर्म0 3.3.14–17)। परन्तु साम्यता के कारण संन्यासाश्रम का ही अभाव क्यों मानें? यह क्यों न मानें कि दोनों आश्रमों की समानता को देखते हुए लोगों ने गृहस्थ से सीधा अन्त्याश्रम को ही स्वीकार किया करते थे, वानप्रस्थी नहीं बना करते थे? कहा भी गया है कि जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो, उसी दिन गृहस्थ से सीधा संन्यासी बन जावें–"**यद् अहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद् वा गृहाद् वा** (तु0 जाबालोप0 4, अपि च द्र0 मनु0 6; 39)। अतः संन्याश्रम के अभाव में जो साम्यता का हेतु दिया गया है, वे हेतु नहीं है, अपितु हेत्वाभास मात्र है। यथार्थता यह है कि दोनों आश्रमों के नियमादि में अत्यधिक साम्यता होते हुए भी दोनों में मौलिक भेद भी हैं, जिनके कारण से दोनों को पृथक्–पृथक् आश्रम मानना ही पड़ता है। वे भेद इस प्रकार हैं–

1. वानप्रस्थी साथ में अपनी स्त्री को रख सकता है, परन्तु संन्यासी नहीं रख सकता।

2. वानप्रस्थी गृह्य एवं श्रौत अग्नियों को रखकर सभी प्रकार के यज्ञ, याग करता है, पर संन्यासी सभी अग्नियों को आत्मा में समारोपित करता है अर्थात् बाह्य अग्नियों और यज्ञों का सर्वथा त्याग करता है।

3. वानप्रस्थी शिखी एवं यज्ञोपवीत होता है, परन्तु संन्यासी उनका भी त्याग करता।

4. वानप्रस्थी वन में स्थिर निवास बना कर एक ही स्थान में रह सकता है तो संन्यासी एक स्थान पर नहीं रह सकता (वर्षाकालादि अपवादों को छोड़कर) इत्यादि।

आक्षेप– वेदभाष्यों के आधार पर संन्यासाश्रम को वैदिक सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि महर्षि दयानन्द के भाष्य के अनुसार संन्यासाश्रम वैदिक सिद्ध हो भी जाता है, तो जो उनके भाष्य को प्रामाणिक नहीं मानता और केवल सायणभाष्य को प्रामाणिक मानता हो, उसकी संन्तुष्टि कैसे होगी कि वेदों में संन्यासाश्रम का विधान है?

समाधान– मैं भी प्रश्न करना चाहता हूँ कि जो लोग सायण को प्रामाणिक नहीं मानते और केवल दयानन्द को ही प्रामाणिक मानते हैं, उन्हें यह सन्तुष्टि कैसे होगी कि वेदों में संन्यासाश्रम का विधान नहीं है? भाष्यों पर आधृत न होने की बात करते हुए भी पुनः सायण भाष्य पर केन्द्रित होना अज्ञता का द्योतक है। अतः प्रश्न ही निरर्थक है।

आक्षेप– सायण ने अपने वेदादि भाष्यों में कहीं भी यति शब्द का अर्थ संन्यासी नहीं किया। अपितु नियन्ता (ऋ08.6.18), दाता (ऋ0 7.13.1), अयष्टा जन (ऋ0 8.3.9), ऋत्विक् (ऋ0 9.71.7) आदि अर्थ किये हैं। इतना ही नहीं अनेकत्र तो उन्होंने एक जाति विशेष को यति माना है। जैसे–**यतीन् = एतत्संज्ञकान् यज्ञविरोधि–जनान्** (ताण्डय ब्राह्मण 13.4.17)। अतः वेदादि में आगत यति शब्द का अर्थ संन्यासी नहीं है अर्थात् संन्यासाश्रम अवैदिक है।

समाधान– सायणादि भाष्यों के कारण ही लोगों की यह धारणा बन गयी थी कि वेद केवल यज्ञ के लिए ही प्रवृत्त हुए हैं, उनका यज्ञ से भिन्न अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। अतएव विदेशियों ने कहा था कि वेद गड़रिये के गीत हैं। पुनरपि आश्चर्य है कि भारतीय वेदविद्वान् वेद को छोड़कर सायण के शब्दों से संन्यासाश्रम को अवैदिक सिद्ध करने का असफल प्रयत्न करते हैं। उन सायण–भक्त वेदमनीषियों के लिए मैं यहाँ उसी सायण के शब्दों से यह सिद्ध करता हूँ कि संन्यासाश्रम वैदिक है और उसमें सायण की भी अभिमति है।

यति शब्द का अर्थ संन्यासी न करने मात्र से यह कैसे सिद्ध होता है कि सायण संन्यासाश्रम को नहीं मानते थे? उन्होंने कहीं भी इस आश्रम का निषेध किया हो वा इसे अवैदिक घोषित किया हो तो विद्वद्वृन्द बताने का कष्ट करें। उनके भाष्यों में तो संन्यासाश्रम का अस्तित्व स्पष्ट रूप से दीखता है। परन्तु लोगों को अन्धानुकरण को छोड़कर निष्पक्षभाव से विचार करना होगा, देखना होगा। अस्तु, प्रकृतमनुसरामः।

पांच अपराधों के कारण देवताओं ने इन्द्र को यज्ञों में आना प्रतिषिद्ध कर सोमपान का वर्जन किया था (द्र0 ऐ0 ब्रा0 7.28)। उन्हीं अपराधों में से एक अपराध है कि इन्द्र ने यतियों को मारकर, उन्हें टुकड़े–टुकड़े कर, भेड़ियों, जंगली कुत्तों को खिला दिया था। यही प्रसंग बहुत्र आता है। उनमें से कुछ स्थल सायण भाष्य के साथ उपस्थित किये जा रहे हैं–

1. इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत् (तै0 सं0 6.2.7.5)।

2. वेदविरुद्धनियमोपेतान् यतीन् (ताण्डयब्रा0 8.1.4)।

3. (यतीन्=) कर्मविरोधिजनान् सालावृकीपुत्रेभ्यः इन्द्रो दत्तवान् (ताण्डयब्रा0 14.11.28)।

4. (यतीन्=) ज्योतिष्टोमाद्यकृत्वा प्रकारान्तरेण वर्तमानान् ब्राह्मणान् सालावृकेभ्यः =अरण्यभ्यः प्रायच्छत् (ताण्डयब्रा0 18.1.9)।

5. (यतीन्=) यतिवेषधरानसुरांशस्त्रेण च्छित्त्वा .... (ऐ. ब्रा0 7.28)।

6. परमहंस्यरूपं (पारमहंस्यरूपं) चतुर्थाश्रमं प्राप्तानां येषां यतीनां मुखे ब्रह्मात्मप्रतिपादको वेदान्तशब्दो नास्ति तान् यतीनिन्द्र आरण्येभ्यः श्वभ्यः प्रायच्छत् ..... तथा च स्मर्यते "नित्यकर्म परित्यज्य वेदान्तश्रवणं विना। वर्तमानस्तु संन्यासी पतत्येव न संशयः" इति॥...... वेदान्तश्रवणवांछां विना परित्यक्तवतां भवतामपीदृशीगतिरिति दर्शयितुं वेदिसमीपे (सालावृकैः) भक्षणम् (तै0 सं0 2.4.9.2)।

7. केचन यतयः सर्वकर्मसंन्यासं कृत्वा कदाचिदपि स्वमुखे वेदान्तशब्दोच्चारणरहिताः काष्ठदण्डमात्र- धारिणो विवेकज्ञानरहिता यत्र तत्रान्नं भक्षयन्तो नरकयोग्या वर्तन्ते। तथा चान्यत् श्रूयते ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी सः (संन्यासी) उच्यते। काष्ठदण्डो धृतो येन संन्यासी ज्ञानवर्जितः। स याति नरकान् घोरान् महारौरवसंज्ञकानिति। सालावृका अरण्यश्वानः, तेषामपत्यभूता बालकाः श्वानः सालवृकेयास्तेभ्यस्तान् यतीन् इन्द्रो मारणार्थं प्रयच्छत्। ते च यतयो वेदान्तशब्दरहिता इत्येतदर्थमिन्द्रवाक्यरूपेण कौशीतकिनश्चामनन्ति। अत्युन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छदिति। तथादत्तवन्तं तमिन्द्रं अश्लीला निन्दारूपा काचिद् वागभ्यवदत्। इन्द्रो ब्रह्महत्यां कृतवानित्येवं निन्दा लोके सर्वत्र प्रसूता। ततः स इन्द्रः स्वयमशुद्धोऽस्मीत्यमन्यत। सोऽशुद्धिपरिहारोपायं वेदेष्वपि स्थिते शुद्धाशुद्धीयनामके द्वे सामनी अपश्यत्। ताभ्यां सामभ्यां सर्वः शुद्धोभूतः (ताण्डयब्रा0 19.4.7)।

इन्द्र द्वारा यतियों का मारा जाना आदि एक आख्यान मात्र है। इसके अभिप्राय का स्पष्टीकरण सायण ने तै0 तं0 2.4.9.2 पर दिया है और ताण्डय ने तो इस आख्यान को शुद्धाशुद्धीय साम का प्रशंसात्मक माना है। उद्धृत वचनों से सायण का मत विस्पष्ट है कि जो कालाक्षरभैंस बराबर हो, भोजनभट्ट हो और पवित्र ब्रह्मसंस्थ ज्ञानवान् संन्यासियों का वेषधारण कर लोगों को ठगता हो, झूठे संन्यासी बनकर वैदिक कर्म-धर्मों को छोड़ दिया हो और आलसी बनकर यज्ञों को त्यागना ही नहीं, अपितु यज्ञों का विरोध भी करता हो, ऐसी आसुरीप्रवृत्तिवाला यति है। नहीं-नहीं वह तो यतिवेषधारी मात्र है। यथार्थ में संन्यासाश्रम के धर्मों का पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धा से पालन करने वाले, ज्ञानरूपी दण्डधारी, सच्चे संन्यासी विद्यमान होने पर ही उनके नकल करने वाले तथाकथित संन्यासियों (यतिवेषधारियों) का कथन सम्भव होगा, अन्यथा नहीं। जैसे कि रामायण काल के रावण प्रसंग पर लिख चुका हूँ। 'चतुर्थाश्रमं प्राप्तानां येषां यतीनां मुखे' यहाँ क्या यति का अर्थ संन्यासी किया नहीं गया है? तां0 ब्रा0 19.4.7 के उद्धरण में भी स्पष्टरूप से यति का अर्थ संन्यासी ही माना गया है। अब कोई विचार करें-सायण ने कहाँ लिखा है कि यति का मतलब इन्द्रविरोधी संगठन है वा कोई जाति विशेष है। सायण ने तो इन वचनों में मुक्तकण्ठ से सच्चे संन्यासाश्रम को स्वीकारा है। और साथ में झूठे संन्यासियों को लताड़ा भी है। पुनरपि कोई सायण को संन्यासाश्रम का विरोधी बतावें और उनके भाष्य के आधार पर संन्यास आश्रम को अवैदिक कह दें तो उनके लिए "अन्धेन नीयमानो यथान्धः" के अतिरिक्त और कुछ कहने को शेष नहीं रहता। ❀❀❀

गतांक से आगे–

पुराणों को किसने बनाया?

लेखक: डॉ0 श्रीराम आर्य

ब्रह्मा जी की निन्दा

वेदकर्ता जगद्धर्ता बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः।
सोऽपि विक्लवतांप्राप्तो द्रष्ट्वा पुत्रीं सरस्वतीम्।। 33

(देवी भागवत पुराण 4–20)

अर्थ– वेद का बनाने वाला, जगत का रचयिता महा बुद्धिमान चार मुँह वाला ब्रह्मा भी अपनी ही बेटी सरस्वती को देखकर कामदेव से विकल हो गया।

हरिर्ब्रह्मा शचीकान्तस्तथान्ये सुर सत्तमाः।
सर्वे छल विधौ दक्षा मनुष्याणां चका कथा।।

(देवी भागवत पुराण 4–13–10)

अर्थ– विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य सारे देवतागण सबके सब छल–कपट करने में दक्ष हैं, तब बेचारे मनुष्यों की क्या कथा है?

ब्रह्माच बहुवारंहि मोहितः शिवमायया।
अभवदभोक्तु कामश्च स्वसुतायां परासु च।।

(शिव पुराण, उमा संहिता, अध्याय 4, श्लोक 27)

अर्थ– ब्रह्मा जी ने अनेक बार शिवजी की माया से मोहित होकर आसक्त हुई अपनी पुत्री से भोग करने की इच्छा की।

विष्णु जी की प्रशंसा

सर्ग स्थिति विनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने।।

(विष्णु पुराण 1–2–4)

अर्थ– जो विश्व रूप प्रभु विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का मूल कारण है, उस परमात्मा विष्णु भगवान को नमस्कार है।

भौमं मनोरथं स्वर्ग स्वर्गिवन्द्यंचयत्पद्म।
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम्।। 6।।

अर्थ– भगवान विष्णु की आराधना करने से मनुष्य भूमण्डल सम्बन्धी समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गलोक निवासियों के भी वन्दनीय ब्रह्मपद और परम निर्वाण पद को भी प्राप्त कर लेता है।

विष्णु जी की निन्दा

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन काम,
मीनोबभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चात्नृसिंह इति यच्छल कृद्धरायां,
तान्सेवतां जननि मृत्यु भयं न किं स्यात्।। 18।।

(देवी भागवत पुराण, स्कन्द 5, अध्याय 19)

अर्थ– जिस विष्णु ने भृगु के शाप के कारण मछली–कछुआ–सुअर और नृसिंह के अवतार धारण किये और पीछे वामन बनकर संसार में छल किया, उस विष्णु की या उसके अवतारों की जो भक्ति करेंगे, उनको क्यों नहीं मृत्यु का भय अर्थात् दुख मिलेगा?

महेश्स्ययैव दासोऽयं विष्णुस्तेनानुकम्पितः।

(सौर पुराण, अध्याय 40, श्लोक 5)

अर्थ– विष्णु तो शिवजी का नौकर है।

सभी देवों की निन्दा

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा।। 15।।
रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि राग संयुतः।
रागवान्किंम् कृत्यं वै न करोति नराधिपः।। 16।।

(देवी भागवत पुराण 4–13)

अर्थ– विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, बृहस्पति कोई भी क्यों न हो? ये सब देहधारी होने के कारण सब विकारों से युक्त हैं। विष्णु, शिव, ब्रह्मा ये सभी रागी हैं, और हे राजन्! रागी व्यक्ति संसार में कौन सा कर्म–कुकर्म नहीं करता है?

ये वास्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढ़ा।
माया गुणैस्तव चतुर्मुख विष्णु रूद्रान्।।
शुभांशु वन्हियम वायु गणेश मुख्यान्।
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये।।

(देवी भागवत पुराण 5–19–6)

अर्थ– जो लोग आपके मायाजाल में फंसकर देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, अग्नि,

यम, वायु, गणेश जिनमें मुख्य हैं, उन देवताओं की पूजा करते हैं, वे सभी मूर्ख हैं। क्या तेरी अर्थात् देवी की शक्ति के बिना ये देवता कुछ भी कर सकते हैं।

गणेश जी की प्रशंसा

त्रिदेव बोले–

गणेशो विघ्नहर्ता हि सर्व काम फलप्रदः।। 22।।
एतत्पूजांपुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं नरैः।। 23।।

(शिव पुराण, रूद्र संहिता, कुमार खण्ड, अध्याय 18)

अर्थ– तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महादेव बोले–गणेश जी विघ्नों के नाश करने वाले तथा सर्व मनोरथ पूर्ण करने वाले होंगे। लोक में पहिले इनकी पूजा मनुष्यों द्वारा होगी, तत्पश्चात् हम लोग पूजे जाया करेंगे।

गणेश जी की निन्दा

योऽभूद् गजानन गणाऽधिपतिर्महेशात्।
ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः।।
जानन्ति ते न सकालार्थ फल प्रदात्रीं।
त्वां देवि विश्व जननीं सुख सेवनीयाम्।।

(देवी भागवत पुराण, 5–19–20)

अर्थ– जो गणेश महादेव जी से पैदा हुआ है, उसकी जो मूर्ख लोग भक्ति करते हैं, वे बुद्धिहीन लोग हैं, हे विश्व जननी एवं सकल फलों के देने वाली माता! ये लोग तुझको नहीं जानते हैं कि तू ही समस्त सुखों के लिए सेवन करने योग्य है।

इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्मा की निन्दा

इन्द्रोऽग्निश्चन्द्र मावेधाः परदाराभि लम्पटाः।

(देवी भागवत पुराण 4–13–13)

अर्थ– इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, ब्रह्मा आदि ये सभी परनारियों के लम्पट हैं।

देवता व ऋषियों की निन्दा

अमराणां गुरूः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि।
तदा कः वक्ता स्वाद्राजसस्तामसः पुनः।। 8।।
हरिब्रह्मा शचीकान्तस्थाऽन्ये सुरसत्तमाः।
सर्वे छल विधौ दक्षा मनुष्याणां च का कथा।। 10।।

काम क्रोधाग्निं संतप्ता लोभो पहत चेतसः।
छले दक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः॥ 11॥
वशिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्था।
एते पाप रताः काउन्नगति धर्मस्यमरानद॥ 12॥

(देवी भागवत पुराण, 4-13)

अर्थ– देवताओं के गुरु ही जब साक्षात् झूठ बोलने वाले हैं तो राजस व तामस गुणों से युक्त और कौन सत्यभाषी होगा? विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य देवता सभी छल करने में दक्ष हैं तो मनुष्य का फिर क्या कहना?

काम, क्रोध, लोभ से अभिभूत एवं छल-कपट करने में ये सारे देवता तथा तपोनिधि मुनि वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, बृहस्पति सभी निपुण हैं, सभी पापों में रत हैं तो फिर हे राजन्! धर्म की क्या गति होगी?

वशिष्ठ ऋषि का अपमान

गणिका गर्भ संभूतो वशिष्ठश्चो महामुनिः॥ 29॥

अर्थ– वशिष्ठ जी गणिका अर्थात् वेश्या की औलाद थे।

उल्लू से कणाद आदि ऋषियों की पैदायश

उल्लूकी गर्भ सम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः॥ 28॥

अर्थ– कणाद आदि ऋषि उल्लू केगर्भ से पैदा हुए थे।

शृंगी ऋषि हिरनी से पैदा हुए

हरिणी गर्भ संभूतः ऋष्य श्रृंगो महामुनिः॥ 26॥

अर्थ– हिरनी के गर्भ से श्रृंगी ऋषि पैदा हुए थे।

माण्डव्य मुनि मेंढकी से पैदा हुए

माण्डव्यो मुनि राजस्तु मण्डूकी गर्भ संभवः॥ 24॥

शुकदेव जी तोती से व कणाद आदि मुनि उल्लू से पैदा हुए

शुक्याः कणदाख्यस्त थोलूक्याः सु तोभवत्॥

(भविष्यपुराण ब्राह्म पर्व अध्याय 42)

अर्थ– मादा तोता से शुकदेव जी तथा कणाद आदि ऋषि उल्लूकी के गर्भ से पैदा हुए थे।

(शेष अगले अंक में)

माता की पुकार

रचयिताः-ऑंकारसिंह विभाकर, उमरा (सुल्तानपुर) उ० प्र०

संस्कृत-संस्कृति से विरत, संस्कार से दूर।
आकर्षण सौन्दर्य में, अनाचार भरपूर॥ 1॥

शिक्षा रोती आज है लखि शासक करतूति।
चारित्रिक बल घट गया, मिलती नहीं विभूति॥ 2॥

राष्ट्र धर्म क्रन्दन करै, कुर्सी करती हास।
कदाचार सर्वत्र है, सदाचार उपहास॥ 3॥

जातिवाद की बेलि में, सत्ता आयी फूल।
नेता पूँजीपति बने, गये प्रजाहित भूल॥ 4॥

बाहुबली सब दलों में, मगर बने हैं आज।
निगलें मानव मूल्य को, बने हुए सिरताज॥ 5॥

भारत माता के कटे, बायें-दायें हाथ।
शीश उतारन में लगे, सत्ताधारी हाथ॥ 6॥

राष्ट्र धर्म अस्मिता की कहीं उठी आवाज।
उसें दाबते तुरत ही सत्तारूपी बाज॥ 7॥

अंग्रेजी का देश में, बढ़ा हुआ वर्चस्व।
ध्वस्त हो रहा आज है हिन्दी का सर्वस्व॥ 8॥

जहाँ कहीं देखो वहीं, युवा यूथ में जोश।
पर क्या सत्य-असत्य है, यही नहीं है होश॥ 9॥

आज नहीं है देह में देश भक्ति का रक्त।
इसीलिये हम पी रहे, नर निरीह का रक्त॥ 10॥

आरक्षण की दौड़ में, आगे हुए तमाम।
अक्षम रहे स्वकर्म में, नहि विकास से क ाम॥ 11॥

बदली शिक्षा आज है, रंगी पश्चिमी रंग।
इसीलिये तो देश का, युवक हुआ बदरंग॥ 12॥

गृद्ध दृष्टि हम पर किये, आज पड़ौसी देश।
अरे भरत–पूतो जगो, अक्षय रहे स्वदेश॥ 13॥

बसुधावासी बन्धु सब, एक पिता परमेश।
मिल–जुल कर आगे बढ़ो, होवे नहीं भदेस॥ 14॥

सद विचार हों सभी के, नर–नारी सम्मान।
सुख दुख में साथी रहें, बढ़े ज्ञान विज्ञान॥ 15॥

अचला–आँचल में बढ़े, सुख समृद्धि की बेलि।
अनुपम स्नेह सुगन्ध से, पवन करे नित खेल॥ 16॥

राम–कृष्ण के सम बनो, भारत माँ के पूत।
शुचिता लाओ कर्म में, हो तुम सुघर सपूत॥ 17॥

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

स्वामी श्रद्धानन्द	2 फरवरी
माता जीजाबाई	6 फरवरी
सरोजिनी नायडू	13 फरवरी
रामकृष्ण परमहंस	18 फरवरी
स्वामी दयानन्द सरस्वती	24 फरवरी
महादेवभाई देसाई	25 फरवरी

12 फरवरी	*बसन्त पंचमी*
12 फरवरी	*उत्पादकता दिवस*
28 फरवरी	*राष्ट्रीय विज्ञान दिवस*

महापुरुषों की पुण्यतिथि

कल्पना चावला	1 फरवरी
कन्हैयालाल मुंशी	8 फरवरी
पं० दीनदयाल उपाध्याय	11 फरवरी
सुभद्राकुमारी चौहान	15 फरवरी
वासुदेव बलवंत फड़के	17 फरवरी
गोपालकृष्ण गोखले	19 फरवरी
महाराणा प्रताप	21 फरवरी
कस्तूरबा गांधी	22 फरवरी
वीर सावरकर	26 फरवरी
चन्द्रशेखर आजाद	27 फरवरी
डॉ० राजेन्द्रप्रसाद	28 फरवरी

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)
बाल सत्यार्थ प्रकाश	मूल्य 30)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)
मील का पत्थर	मूल्य 20)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)
दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
ओंकार उपासना	मूल्य 12)

गतांक से आगे–

महान समाधान की खोज में

लेखकः–स्वामी दयानन्द

एक रात को मैं अपनी खिड़की से तारों की ओर देख रहा था और कहने लगाः–'इन तारों ने उस प्राचीनयुग के भारत को भी देखा होगा' तब मैंने हृदय की वेदना के साथ प्रश्न कियाः–''परन्तु कितनों को उस भारत का स्मरण है? कितनों को उसका प्राचीन सन्देश याद है–**'नित्य ईश्वर एक है और उसमें कोई जाति का भेद नहीं'** यह सन्देश गत शताब्दी के कुछ महान् भारतीय आत्माओं की जीवनी से प्रकट हो रहा है। उनके पारस्परिक भेदों पर विचार करो–उनके शिष्यों से कहो और स्वयं एक ओर खड़े रहो। परन्तु उनके भेदों में ही एकता है। और मैं जो ऐक्य का प्रेमी हूँ। उन महान् व्यक्तियों को परमात्मा के एक परिवार में भाईयों की तरह देखता हूँ। मैं प्रेमपूर्ण श्रद्धा के साथ अर्वाचीन भारत के **'धार्मिक नवीन युग'** के सब नेताओं के आगे सिर झुकाता हूँ। उनमें से प्रत्येक भारत के भिन्न–2 युगों के आदर्शों का साक्षी है। प्रत्येक भविष्य का अग्रदूत है। प्रत्येक मार्ग–प्रदीप है। उनमें से एक आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द थे। उनके अन्दर एक शक्ति थी। मेरा विश्वास है कि आगामी दिनों में उनकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होगा। मैं समझता हूँ कि उनके सन्देश और जीवनी का मूल्य अब सार्वभौम हो चुका है।

ब्राडनिंग कहता है कि–'आत्मा के विकास को छोड़कर और कुछ अध्ययन करने **योग्य नहीं।'** सचमुच दयानन्द के आत्म–विकास की कहानी मेरे लिये अदभुत सौन्दर्य रखती है।

उनकी जीवनी मेरे विचार में पांच बड़े भागों में बंट जाती है–

(1) 1824–45; बाल्यकाल और कुमारावस्था।

(2) 1845–1860; आत्मिक खोज का समय।

(3) 1860–1863; शिष्य बनकर अध्ययन।

(4) 1863; शान्तिपूर्वक विचार।

(5) 1863–1883; प्रचार और संगठन का समय।

1824 ई0 में काठियाबाड़ के अन्तर्गत मौर्वी राज्य के एक ग्राम में उनका जन्म हुआ। उनके पिता एक सम्पन्न लेन–देन करने वाले व्यक्ति थे। जिनका नाम **'अम्बाशंकर'** था। उन्हें पता नहीं कि उनका पुत्र अर्बाचीन भारत में संस्कृतविद्या और शास्त्रार्थ में दूसरा शंकराचार्य होगा। शंकर के समान दयानन्द का अनुसन्धान करने वाला मस्तिष्क था। अम्बाशंकर लेन–देन ही न करते थे वे जमींदार भी थे। 'जमादार' भी अर्थात् गांव के राज्यकर को इकट्ठे करने वाले और मजिस्ट्रेट। वे 'शिव' और 'लक्ष्मी' की पूजा करते थे। उसी प्रकार उनका पुत्र **मूलशंकर** (जो कि उस समय दयानन्द का नाम था) वह करता था। वह 1834 ई0 में मूर्तिपूजा करना प्रारम्भ करता है, शिव की कथा सुनने में उनकी बड़ी रुचि है। 1838 ई0 में शिवरात्रि की रात को वह अपने पिता के साथ शिवमन्दिर को जाता है। उपवास करता है, सारी रात जगता है और एक चूहे को शिव की मूर्ति पर उस खाद्य सामग्री को जो

देवता पर चढ़ाई गई थी खाते हुये देखता है। दिव्यआत्मा (ईश्वर) उसकी आत्मा को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। और मूलशंकर 14 वर्ष की आयु में आत्मा की पुकार सुनता है। 1838 की स्मरणीय शिवरात्रि की रात के समय उसकी आत्मा बोलती है। देवता के प्रति चूहे का स्वच्छन्द व्यवहार मूलशंकर के मन में ऐसे सन्देह जगाता है। जो कि समय पाकर 'तीव्र खोज' का रूप धारण कर लेते हैं। बालक अपने अन्दर प्रश्न करता है:-क्या यह संसार के पति की मूर्ति हो सकती है? सत्य का मार्ग प्रश्नों और उत्तरों का मार्ग है बहुत से मनुष्यों ने सेव को गिरते हुये देखा था, परन्तु यह न्यूटन ही था जिसने देखा और प्रश्न किया:-क्या सेव पृथ्वी पर गिरता है? लगातार खोज के पश्चात् उसे उत्तर मिला:-यह आकर्षण का सिद्धान्त है। न्यूटन साइंस का एक ऋषि बन गया। बहुत से लोग शिव के मन्दिर में देवता पर पूजा चढ़ाने के लिये गये थे। परन्तु यह दयानन्द ही था जिसने चूहे को मूर्ति पर दौड़ते और खाद्य पदार्थों को खाते देखकर पूछा:-'क्या यह मूर्त्ति ही वह सर्वोच्च शक्ति जीवन की वास्तविक स्वामी हो सकती है?

मूलशंकर के पिता, बहुत देर तक जगने में असमर्थ हो कर सो गये हैं, और पुजारी भी मन्दिर के बाहर सो रहे हैं। केवल मूलशंकर जगता है अनेक विचार उसके मस्तिष्क में उठ रहे हैं। क्या यह मूर्ति महादेव-संसार के सबसे बड़े देव की हो सकती है? दयानन्द अपने आत्मचरित में लिखते हैं।

विचारों को अधिक देर तक रोकने में असमर्थ हो कर एक साथ मैंने अपने पिता को जगाया और उनसे पूछा कि क्या मन्दिर में शिव का यह चिन्ह ही स्वयं महादेव-धर्मग्रन्थों का महान् देव है? मेरे पिता ने कहा 'तुम यह प्रश्न क्यों करते हो।' मैंने उत्तर दिया 'क्योंकि मैं इस बात को असंभव समझता हूं कि सर्वशक्तिमान्, सजीव, परमेश्वर और इस मूर्त्ति को जो कि अपने ऊपर चूहे को चलने फिरने देती है और बिना किसी प्रकार की रोक के अपने को भ्रष्ट होने देती है-एक समझूं'!

मूलशंकर ने पुकार को सुना और उसे महान् समाधान की खोज में जाना आवश्यक हो गया। अब उसे सच्चे शिव की तलाश में, सब देवों के परे उस परमप्रभु की खोज में घूमना आवश्यक है। उसे इसके लिये माता-पिता और घर बार को छोड़ना होगा। वह सत्य को नहीं छोड़ सकता। कुछ वर्ष बीत जाते हैं। आत्मा की आवाज 14 वर्ष की बहिन की मृत्यु के द्वारा फिर आती है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं 'यह मेरे जीवन में पहला ही वियोग था और इससे मेरे हृदय पर बहुत गहरा धक्का पहुंचा, मैं पत्थर की भांति विचारतरंग में डूबा खड़ा था।' मनुष्य अस्थिरता से बचने के लिए क्या करे? मृत्यु का मुकाबिला किस तरह करे और कैसे अमरता को प्राप्त हो? ऐसे प्रश्न मूलशंकर के मन में आन्दोलित हो रहे थे। वह केवल 18 वर्ष का था परन्तु वह जीवन की अस्थिरता अनुभव वकरने लगा। वह जानता है कि मनुष्यों के जीवन अस्थिर हैं उनमें से एक भी नहीं है जो मृत्यु के क्रूरग्रास से बच सके। उसे भी एक दिन मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, फिर वह मोक्ष के लिये किसका सहारा ले? वह पूछता है "-कहां मुझे मुक्ति पाने के निश्चित साधन प्राप्त हो सकेंगे" ? थोड़े दिन पश्चात् ही उसके चाचा का देहान्त होता है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं 'वे अत्यन्त विद्वान् थे और उनके अन्दर अनेक दिव्य गुण थे। उनका मुझ पर बड़ा प्रेम था और जन्म से ही मैं उनका कृपापात्र बन गया था। उनकी मृत्यु ने मुझे और भी अधिक अद्विग्न कर दिया और मेरी यह धारणा अधिक दृढ़ हो गई थी कि इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है और सांसारिक जीवन में कोई अभिलषणीय वस्तु नहीं है जिसके मनुष्य को जीना चाहिये।

यह कथा आगे चलती है। इससे मुझे एक दूसरी घटना याद आती है जो इस्लाम के महान् पुरुष, हसन

अलरशीद के सम्बन्ध में:–

एक दिन हसन अलरशीद ने एक किताब पढ़ी जिसमें कवि ने लिखा था–

वे राजा कहाँ हैं? और उनमें से शेष अब कहां हैं जो एक किसी दिन संसार के स्वामी थे?

वे अपनी सारी शान और शौकत के साथा चले गये! वे उसी मार्ग में गये हैं जिसमें से तुझे भी जाना है! ऐ मनुष्य तू अपने हिस्से में–संसार और उन वस्तुओं की, जिन्हें संसार सुन्दर कहता है, चुनता है! ले, ले, जो कुछ तुझे यह संसार दे सकता है, पर याद रख अन्त में 'मृत्यु' होनी है। हसन अल रशीद ने अपना सिर झुकाया और पुस्तक के पृष्ठ पर जिसे वह पढ़ रहा था आँसू गिर पड़े।

मूलशंकर की आयु इस समय 20 वर्ष की है। वह मृत्यु के सामने खड़ा हो चुका है और प्रश्न कर चुका है। 'क्या इस सबका तू ही अन्त है? या कोई इस विश्व में **अमर** भी है? यदि कोई **अमर** है तो कौन मुझे मृत्यु से–मृत्यु के द्वारा अमरत्व तक पहुंचायेगा''? मूलशंकर के अन्दर **'विद्या'** के लिये तीव्र अभिलाषा है। वह अपने पिता से कहता है कि वे उसे संस्कृत विद्या के केन्द्र काशी भेज दें। उसकी माता स्त्री की स्वाभाविक बुद्धि से समझ जाती है कि उसका पुत्र विवाह से बचने के लिये काशी जाना चाहता है। वह कहती है कि 'विद्वान् पुरुष प्रायः विवाह करना नहीं चाहते, और तुम्हारे काशी जाने से विवाह में बाधा होगी' तब मूलशंकर किसी समीपवर्ती ग्राम में एक ब्राह्मण के पास पढ़ने की आज्ञा लेता है। इस ब्राह्मण के आगे मूलशंकर अपना हृदय खोल देता है और कहता है कि विवाह का विचार करना घृणित है! ब्राह्मण इसकी सूचना मूलशंकर के पिता को देता है जो इसे सुनकर अपने पुत्र के शीघ्र विवाह की तैयारी करने लगता है। मूलशंकर की आयु 22 वर्ष की है। पहले ही से 'आत्मा' का 'बिना तार का तार' (पुकार) उसके अन्दर काम कर रहा है। सत्य उसे जैसा कि बहुधा होता है, जंगल की ओर पुकार रहा है! वह संसार के प्रलोभनों का मुकाबला करने के लिये खड़ा हो जाता है। वह उसके अपने ही शब्दो में ''अपने और विवाह के बीच सदा के लिये बाधा'' खड़ी करना चाहता है। ''आत्मा के घर की तलाश'' में वह अपने धनी पिता का घर छोड़ कर चल देता है। यह 1846 ई0 का वर्ष है। धन का वह तिरस्कार करता है क्योंकि उसे **'विद्या'** की खोज है। **'भोग'** को वह छोड़ता है क्योंकि उसे 'योग' चाहिये। उसका पिता कुछ सिपाहियों के साथ उसका पीछा करता है। सिद्धपुर के एक शिवालय में वह पकड़ा जाता है। दयानन्द लिखते हैं–

मेरे पिता अपने सिपाहियों के साथ सिद्धपुर आये। मेले में उन्होंने पग–2 पर मेरा पता चलाया और विद्वान् पण्डितों में जहां–2 मैं गया था वहां से मेरा पता चलाकर अन्त में एक दिन सवेरे एक साथ मेरे सामने आ पहुंचे। उनका मुख क्रोध से जल रहा था। उनने मुझे धिक्कारा और कहा कि तूने सदा के लिये अपने कुल पर कलंक का टीका लगाया है। जब मैंने उनकी दृष्टि की ओर देखा तो मैं भलीभांति समझ गया कि अब जबाब देने से कोई लाभ न होगा। मैंने मन में सोच लिया कि अब मुझे क्या करना चाहिए। मैं हाथ जोड़कर उनके पैरों में गिर पड़ा और नम्रतापूर्ण शब्दों में उनका क्रोध शान्त करना चाहा। मैंने कहा 'मैं स्वयं यहां बहुत दु:खित था और घर लौटना चाहता था कि इतने में भाग्य से आप यहाँ आ गये।' अब मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके साथ घर चलने को तैयार हूँ।

दयानन्द स्वीकार करता है कि यह कथन सत्य न था। उसने घर वापिस जाने काा विचार न किया था, और वह घर नहीं जाना चाहता था। दयानन्द लिखते हैं 'मेरा विचार उतना ही दृढ़ था जितना मेरे पिता का; मैं अपने उद्देश्य पर स्थिर था और भाग जाने का फिर अवसर ढूंढ़ने लगा' 'भय' से 'असत्य' उत्पन्न होता है।

इसलिये महर्षि मनु ने कहा है कि "तुम दूसरों से मत डरो और न दूसरों को अपने से डरने दो।" दयानन्द सच्चाई के साथ कहता है कि उसने अपने पिता से असत्य कहा। दयानन्द का विचार घर लौटने का न था। दयानन्द का पिता क्रोध के आवेश में अपने पुत्र के गेरुवे वस्त्रों को फाड़ डालता है, जोर से उसके हाथ से तूम्बा छीन कर फेंक देता है, उसे मातृघातक कहता है और उसे सिपाहियों को सौंपकर रात दिन उस पर पहरा रखने की आज्ञा देता है। दयानन्द रात के तीन बजे जबकि पहरे देने वाला सिपाही सो जाता है अपने भागने का रास्ता निकाल लेता है।

सत्य के मार्ग में दु:ख और आँसुओं का फर्श बिछा हुआ है। पन्द्रह वर्ष तक वह खोज में लगा रहता है-अमहदाबाद पहुंचता है, वहां से बड़ौदा जाता है, और वहां वेदान्ती संन्यासी ब्रह्मानन्द के प्रभाव में आता है। इसके पश्चात् वह नर्वदा के किनारे चला जाता है। वहां पर उसे 'चिदाश्रम' के समान विद्वान् संन्यासी मिलते हैं। वहां पर उसका स्वामी परमानन्द परमहंस से सम्पर्क होता है और उनके पास वह कुछ महीने अध्ययन करता है। वहीं पर उसे शंकराचार्य के दक्षिण शृंगेरीमठ के स्वामी प्रेमानन्द सरस्वती मिलते हैं यह संन्यासी जो कि वेदान्त के गम्भीर विद्वान् थे उसे संन्यासाश्रम में प्रवेश कराते हैं और उसे संन्यााश्रम का चिन्ह **'दण्ड'** देते हैं। और उनको वह नाम देते हैं जो अर्वाचीन भारत के इतिहास में सदा बना रहेगा। मूलशंकर, जिस का ब्रह्मचारी की दशा में **'शुद्धचैतन्य'** नाम था, संन्यासी होने पर वह प्रसिद्ध **'दयानन्द सरस्वती'** नाम धारण करता है।

दयानन्द की यह कथा उस महांन् समाधान को पाने के लिये स्थान-2 पर घूमने की कथा है। अपने भ्रमण में दयानन्द को एक धनी महन्त मिलता है जो कि उसको अपने मन्दिर के महन्त की गद्‌दी अर्पण करने को तैयार है। दयानन्द उस गद्‌दी को लात मारते हुये कहते हैं कि "मैंने विद्या के लिये और मोक्ष के लिये सब घर बार छोड़ा है" विवाह और धन उसे प्रलोभित नहीं कर सकते। वे अपने आत्म-चरित में लिखते हैं "एक नये संशोधन को खड़ा करना **मेरा** वास्तविक उद्‌देश्य है" वे भारतवर्ष के लिये और मनुष्य जाति के लिये 'फकीर' बन जाते हैं।

दयानन्द और शोपनहार के बीच में कितना अन्तर है। दोनों प्राचीन भारत की विद्या पर मोहित थे। दोनों ऐन्द्रियिक इच्छाओं के संयम में विश्वास रखते थे। परन्तु शोपनहार 'तपस्वी' हुये बिना एक दार्शनिक था। दयानन्द दार्शनिक, तपस्वी और एक सन्त था। किन्तु 'जीवन' की फिलासफी में था। यह दर्शनशास्त्र उसके आध्यात्मिक गुरुओं का था और यह फिलासफी ऋषियों की थी। उस का सिद्धान्त है, कि-"अपने राष्ट्र की सेवा के लिये 'तपस्या' करो।"

मुझे सेण्ट ऐन्थनी की जीवनी याद आती है। वह 250 ई0 में मिसर देश में धनी माता पिता के घर उत्पन्न हुआ। उसे किसी दिन क्राइस्ट के न्यूटेस्टमेण्ट के यह शब्द सुनाई देते हैं-"जाओ, जो कुछ तुम्हारे पास है बेच दो।" वह अनुभवव करता है कि यह शब्द साक्षात् उसी को सम्बोधन करके कहे गये हैं। वह सांसारिक जीवन छोड़ देता है और 'तपस्या' का नया जीवन व्यतीत करने के लिये निकल पड़ता है। दयानन्द भी संसार को छोड़ना है औरर उसे महान् 'खोज' के लिये एक यात्री बनकर चल पड़ता है। कौन उसका पिता है और कौन माता? वही 'महान् प्रभु' सत्य की सेवा ही जिसकी वास्तविक पूजा है। और दयानन्द अपना घर कहां ढूंढ़ता है? प्रत्येक देश मं और उनके हृदयों में जो ईश्वर की पूजा करने वाले हैं और आर्य जाति को नये सिरे से उठाने को तैयार है। ❁❁❁

मन को अपने अधीन रखना चाहिए

लेखकः–बाबू सूरजभान वकील

मनुष्य किसी वस्तु से तो प्रीति करता है और किसी से द्वेष, अर्थात् किसी चीज की ख्वाहिश करता है और किसी से नफरत। जैसे वह खट्टी और मीठी चीजें तो खाना चाहता है परन्तु कड़वी और कसैली चीजों से नाक सिकोड़ता है, सुगन्ध के पास जाता है और दुर्गन्ध से दूर भागता है। मनुष्य के सब प्रकार के काम, सब तरह के उद्यम, श्रम, तदवीरें, आदि सब इसी इच्छा और द्वेष के ही कारण हुआ करते हैं। परन्तु जो यह बात निश्चित होती कि मनुष्य जाति अमुक वस्तु को चाहती है और अमुक वस्तु से दूर भागती है तो बहुत सुविधा रहती, क्योंकि ऐसी दशा में संसार के सभी मनुष्य सदैव उन चीजों को बनाने, संग्रह करने और उनकी रक्षा करने का प्रयत्न किया करते जो मनुष्य जाति को पसन्द होती, और उन सब चीजों को नष्ट कर डालते जो उसके नापसंद होतीं। परन्तु यहाँ तो संसार की समस्त वस्तुओं में से कोई मनुष्य किसी की चाह करता है और कोई किसी की, अर्थात् एक मनुष्य जिस चीज की चाह करता है दूसरा उसी से घृणा करता है। इसी कारण संसार की सभी चीजें मनुष्यों की चाह की चीजें बन रही हैं और सभी नफरत की। देखिए, मैला एक ऐसी चीज है कि जिससे सभी लोग अत्यन्त घृणा करते हैं, परन्तु किसान लोग उसे बहुत उपयोगी समझते हैं और उसे दाम देकर खरीदते हैं।

यदि यही होता कि एक आदमी सदैव एक ही प्रकार की चीजों को पसन्द करता और दूसरी प्रकार की चीजों से नफरत करता, तो भी गनीमत थी, क्योंकि ऐसी दशा में प्रत्येक मनुष्य की कोशिशें सदैव एक ही प्रकार की रहतीं। परन्तु ऐसा भी नहीं होता है। एक ही मनुष्य कभी किसी चीज की इच्छा करता है और कभी किसी की। पहले जिसकी इच्छा करता है पीछे उसी से घृणा करने लगता है और पहले जिससे घृणा करता था पीछे उसी की इच्छा करने लगता है। जैसे कि जिस मनुष्य के शरीर में कफ की ज्यादती हो जाती है उसको मिठाई खाने की बहुत इच्छा होती है और खटाई की तरफ से मन हट जाता है, परन्तु जब उसका पित्त बढ़ता है तब वही मनुष्य खटाई खाने की इच्छा करता है और मिठाई से नफरत करने लगता है। इसी प्रकार यह भी नित्य देखने में आता है कि यह मनुष्य जिससे प्रथम बहुत प्रीति रखता था, जिसको देखकर उसकी कली–कली खिल जाती थी और जिसे एक घड़ी के लिए भी अपने पास से जुदा नहीं करना चाहता था उसी से अगर किसी बात में नाराज हो जाय तो फिर वह उसकी सूरत देखना भी पसन्द नहीं करता है, बल्कि कभी कभी तो वह उसके खून का प्यासा हो जाता है। गरीबों में यह मनुष्य जिन चीजों के लिए तड़फता था, अमीरी आ जाने पर उन्हीं वस्तुओं को देखकर नाक भौं सिकोड़ने लगता है और उन्हें क्षणभर भी अपने सामने नहीं ठहरने देता। जाड़े में वह रूई और ऊन के जिन मोटे–मोटे कपड़ों में लिपटता था, जिन आग की अँगीठियों पर तापता था, गरमी में उन्हीं से घबड़ाता है, और गरमी में जिन शीतल स्थानों को चाहता था जाड़े में उन्हीं से दूर भागता है। गरज यह कि मनुष्य की इच्छायें और जरूरतें भी सदैव स्थिर हीं रहती हैं, बल्कि वे क्षण–क्षण में बदलती रहती हैं और मनुष्य से तरह–तरह के नाच नचाती रहती हैं।

मनुष्य की ये इच्छायें जब प्रबल हो जाती हैं तब वे मनुष्य पर अपना ऐसा प्रभाव जमाती हैं कि वह अपनी हानि लाभ को भूल जाता है और इनके फंदे में फँसकर अपने आप ही अपना नुकसान करने लग जाता है। जैसे कि,

बहुधा देखने में आता है कि यह निश्चय हो जाने पर भी कि अमुक वस्तु खाने से नुकसान पहुँचाती है, बहुतेरे लोग अपनी जीभ के स्वाद के वशीभूत होकर उस चीज को खा जाते हैं और बीमार पड़ जाते हैं, परन्तु फिर भी वे बाज नहीं आते हैं और बीमारी की हालत में भी उसे खाते जाते हैं और अपनी बीमारी को बढ़ाते रहते हैं। इसी प्रकार के ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं कि जिनसे सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं के वशीभूत होकर ऐसे काम करता है कि जिनसे उसको बहुत हानि पहुँचती है।

ऐसी अवस्था में मनुष्य का यह आवश्यक और मुख्य कर्तव्य है कि वह खूब सावधान रहे और अपनी इच्छाओं को ऐसा प्रबल न होने दे कि जिससे वे उस पर अपना प्रभुत्व करने लगें और उससे जिस तरह चाहें वे उस पर अपना प्रभुत्व करने लगें और उससे जिस तरह चाहें नाच नचावें, बल्कि मनुष्य को ही उन पर अपना आधिपत्य रखना चाहिए, अर्थात् अपनी विचारशक्ति के अनुसार हानिकारक इच्छाओं तथा प्रवृत्तियों को सदैव दबाते रहना चाहिए।

इसी प्रकार यदि उसकी चाह या इच्छाशक्ति किसी ऐसी चीज से नफरत रखती हो जो वास्तव में लाभकारी है तो उसको उचित है कि वह अपनी नफरत को दबावे और उस वस्तु को काम में लावे। मान लो वह कड़वी दवा किसी बीमार को बतलाई गई परन्तु उसके खाने को उसका जी नहीं चाहता है, तो उसको उचित है कि वह अपने जी को दबावे और उस दवा को खावे। इसी प्रकार यदि बालकों के साथ खेल में लगकर किसी विद्यार्थी का मन पाठशाला जाने को नहीं चाहती है तो उसे उचित है कि वह कभी अपने मन की आज्ञा न माने और खेल छोड़कर तुरन्त पाठशाला को चला जाय। इसी प्रकार अन्य सभी बातों के विषय में भी समझ लेना चाहिए। क्योंकि इच्छा और द्वेष का उफान सदैव मनुष्य के मन में उठता रहता है और वह सदैव उसकी विचारशक्ति को दबाता रहता है। इसलिए मनुष्य को सदैव उससे सावधान रहना चाहिए और अपनी विचारशक्ति को प्रबल रखकर सदैव उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। कभी भूलकर भी इच्छा और द्वेष के फंदे में न आना चाहिए, बल्कि अपनी इच्छा द्वेष अर्थात् चाह-अचाह को ही अपने लाभ हानि के अनुसार बनाना चाहिए। यदि मनुष्य इस प्रकार सावध ानी से काम ले, तो वह अनेक आपत्तियों से बच जाय और सुख शान्ति से अपना जीवन बितावे।

हम पहले ही कह आये हैं कि पशुपक्षी तो सब कार्य अपनी प्रकृति के ही अनुसार करते हैं-वे उसमें कुछ भी घटा बढ़ा या न्यूनाधिकता नहीं कर सकते। परन्तु मनुष्य में विचारशक्ति है कि जिसके द्वारा वह अपनी सुख-शान्ति बढ़ाने के नये-नये उपाय निकालता है और अपनी प्रकृति को दबाकर उनके अनुसार कार्य करता है। इस प्रकार वह उन्नति पर उन्नति करता जाता है। ऐसा करने से ही वह पशुओं से उत्तम हो सका है और अनेक प्रकार की आपत्तियों से बच कर अपनी सुखशान्ति की वृद्धि करने में समर्थ हुआ है। यह शुभ परिणाम अपनी हानि लाभ का ख्याल रखने और अपनी विचार शक्ति से काम लेने के कारण ही हुआ है। परन्तु खेद की बात है कि अनेक मनुष्य अपनी प्रकृति को दबाने या बदल डालने में बहुत लापरवाही करते हैं जिसके उनकी प्रकृति बहुत बिगड़ जाती है और उनकी वासनायें बहुत प्रबल हो जाती हैं। वे उनको कठपुतली की तरह नचातीं और भले बुरे सब तरह के काम कराती हैं। इस तरह मनुष्य वासनाओं के वशीभूत होकर पशु श्रेणी से भी नीचे गिर जाता है, और वह वास्तव में अपनी वासनाओं के समक्ष काठ की पुतली ही बन जाता है।

देखिए, पशु अपनी प्रकृति के अनुसार किसी खास ऋतु में ही कामवासना की तृप्ति करते हैं, और

इसीलिए उनका वीर्यबल इतना बढ़ा चढ़ा होता है कि एक बार के काम-सेवन से ही गर्भ रह जाता है; परन्तु मनुष्य ने अपनी प्रकृति को ऐसा बिगाड़ रक्खा है कि वह बारहों महीने काम सेवन करता रहता है, और इस प्रकार वह अपनी हानि करने से जरा भी नहीं हिचकता है। अधिक काम-सेवन से जो भयंकर हानियाँ होती हैं वे किसी से छिपी नहीं हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्यों में पशुओं की अपेक्षा बल बहुत कम रहता है, इसलिए उसे पशुओं की अपेक्षा अधिक संयम से रहने की आवश्यकता है और प्रकृति भी यही कहती है, परन्तु मनुष्य ने अपने बुद्धिबल से अनेक औषधियाँ, पुष्टिकारक भोजन और कई प्रकार की ऐसी तदवीरें निकाली हैं कि जिनके कारण उसे नित्य ही उक्त वासना बनी रहती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य बहुत निर्बल हो गया है और दिन पर दिन निर्बल होता जाता है। जितना जितना वह निर्बल होता जाता है उसकी इच्छायें भी उतनी ही उतनी प्रबल होती जाती हैं और उसको हर वक्त अपनी लालसाओं को पूर्ण करने में फँसाये रहती हैं। इन वासनाओं की उत्तेजना के कारण उसकी विचारशक्ति ऐसी शिथिल हो जाती है कि उसे अपनी कमजोरी का ख्याल भी नहीं आता है। वह इस काम से उस समय तक बाज नहीं आता है जब तक उसकी शारीरिक शक्तियाँ उसे साफ जबाब नहीं दे देती हैं और वह चारपाई पर नहीं पड़ जाता है। ऐसी हालत में भी वह अपने पूर्व बल को पुनः प्राप्त करने और इच्छाओं को दबाने की कोशिश नहीं करता है, बल्कि बीमारी की हालत में भी अपनी इच्छानुसार ही बर्ताव करता है। औषधियों के प्रभाव से ज्यों ही वह उठने बैठने योग्य हो जाता है त्यों ही वह अपने को पूर्ण स्वस्थ समझ लेता है और शीघ्र ही फिर उसी काम-वासना में लग जाता है। यह देखकर कहना पड़ता है कि इस समय मनुष्य की दशा ठीक कराये पर चलनेवाले इक्के या शिकरमके घोड़ों की सी हो रही है, जो सदैव बिल्कुल दुर्बल बने रहते हैं, परन्तु नित्य बीसों मील दौड़ते रहते हैं और शीघ्र ही मर जाते हैं।

इस विषय में दूसरा दृष्टान्त यह दिया जा सकता है कि खाना खाने पर जब मनुष्य का पेट भर जाता है तब उसका चित्त उससे हट जाता है, और इतने पर भी वह उसे जबरदस्ती पेट में ठूंसना चाहता है तो उसे उबकाई आने लगती है और कभी कभी तो कै भी हो जाती है। गोद के बच्चों को तो अक्सर ऐसा हुआ रकता है। जब उनकी माँ उनको अधिक दूध पिला देती है तो वे उसे तुरन्त ही उगल देते हैं और अपना पेट हलका कर लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य की प्रकृति स्वतः बहुत सावधानी रखती और होशयारी से काम लेती है। पेट भर जाने पर वह तुरन्त ही सूचना देती है कि अब पेट में गुजायशी नहीं है, परन्तु इतने पर भी जब कोई खाता ही जाता है तो वह उसे निकालकर बाहर फेंक देती है। इसी प्रकार अगर किसी कारण से पहला खाया हुआ भोजन हजम न हो पाया हो और दुबारा खाने का समय आ जाय तो उस समय भी उसे रुचि नहीं रहती है, मानो प्रकृति कहती है कि अभी पेट में दुबारा खाने को जगह नहीं हुई है। ऐसे ही जब किसी कारण से पाचनशक्ति बिगड़ जाती है तो फिर कई दिन तक भूख नहीं लगती है। इस प्रकार हर समय मनुष्य की प्रकृति उसको सावधान करती रहती है, और मानो वह रेल के उस बाबू का काम देती है जिससे लाइन क्लियर मिले बिना सफेद झंडी दिखाये बिना रेल नहीं चलती है-वहीं पर ठहरी रहती है।

परन्तु शोक की बात है कि मनुष्य अपनी प्रकृति इस रोक या मनाही पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है और उसके सुप्रबन्ध को तोड़ने के लिए अनेक प्रकार के सुस्वादु भोजन बनाता है, उसके साथ ऐसी खट्टी मीठी चटनियाँ लगाता है कि प्रकृति भी अपना काम भूल जाती है और जीभ का स्वाद लेने में लग जाती है। इस प्रकार मनुष्य

रिश्वत देकर या फुसलाकर प्रकृति को अपना काम करने से रोकता है और जगह न होने पर भी पेट में बहुत सा भोजन ठूंस देता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसका बहुतसा हिस्सा बिना पचे ही निकल जाता है और वह शरीर के ढाँचे को बिगाड़ कर अनेक रोग पैदा करता है।

काम-सेवन और भोजन इन दो दृष्टान्तों से पाठकों को यह बात भली भांति समझ में आ गई होगी कि मनुष्य ने अपनी इच्छाओं के दबाने और बदलने की महान् शक्ति का दुरुपयोग करके अपनी प्रकृति के उत्तम रूप को सँभालने के बदले उसे बिगाड़ डाला है, जिसके कारण वह अनेक बड़ी बड़ी विपत्तियों में फँसकर पशुओं से भी गया बीता बन गया है। विचारने की बात है कि छोटा बड़ा, निर्बल, सबल, कोई भी ऐसा पशु पक्षी नहीं है कि जो प्रकृति विरुद्ध कामक्रीड़ा करता हो, अर्थात् हस्त-मैथुन, गुदा-मैथुन आदि के द्वारा अपनी कामाग्नि को बुझाता हो। परन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्यों में ये सब दोष उत्पन्न हो गये हैं, और स्त्री-पुरुष दोनों ही इन दोषों के अपराधी हैं। इसका कारण यही है कि पशुओं को अपनी प्रकृति के विरुद्ध न तो कोई बात सूझती है और न वे अपनी प्रकृति के विरुद्ध कोई काम कर ही सकते हैं। परन्तु मनुष्य विचारशक्ति रखता है जिसके द्वारा वह प्रत्येक विषय में नई नई बातें सोच सकता है। इसलिए जब वह असावधान होकर अपनी विचारशक्ति की बागडोर को ढीली छोड़ देता है और अपनी लाभहानि के विचार को भूलकर अपनी इच्छाओं के वश में हो जाता है तथा उनके इशारे पर नाचने लगता है, तब वह अपनी प्रकृति को ऐसे विपरीत रूप में भी बदल डालता है कि जिससे उसकी अपरिमित हानि होती है और वह अत्यन्त नीच और पतित बन जाता है।

इस कथन से हमारा यह मतलब नहीं है कि पशु पक्षियों की तरह मनुष्य भी अपनी प्रकृति के ही अधीन रहे और अपनी विचारशक्ति के द्वारा उसमें कुछ भी सुधार या फेरफार न करे, बल्कि हम भी यही कहते हैं कि उसे पशुओं की तरह सदैव एक लकीर पर न चलना चाहिए, प्रत्युत हर समय अपनी विचारशक्ति से काम लेकर जिस समय जैसी जरूरत हो अपने प्रत्येक काम में नवीनता और फेरबदल करते रहना चाहिए और अपनी बुद्धि को बढ़ाना चाहिए, परन्तु असावधान होकर अपनी इच्छाओं को ऐसे उद्धत रूप में प्रवृत्त न होने देना चाहिए, जिससे मनुष्य के मनुष्यत्व में बट्टा लगता हो या जो उसे ऊँचे उठाने के बदले नीचे गिरा दें।

समझने की बात है कि घोड़ा जब तक खूंटे से बँधा रहता है तब तक वह उस खूंटे के चारों ओर घूम सकता है और उतनी ही दूर जा सकता है जितनी लम्बी रस्सी से वह बँधा है। परन्तु बँधा रहने के कारण वह न तो अधिक उछल कूद ही कर सकता है और न कहीं भाग ही सकता है। लेकिन खूंटे से खुल जाने पर उसे इस बात की आजादी मिल जाती है कि वह दुनिया भर में जहाँ चाहे जाय और जैसी चाहे उछल कूद करे। इस प्रकार पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटे से बँधे हैं, जिससे वे उसके घेरे के बाहर न तो जा सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, परन्तु मनुष्य बिल्कुल आजाद है, वह जो चाहे कर सकता और विचार सकता है। हमारा यह कहना नहीं कि मनुष्य भी अपनी आजादी खो दे और विचारशून्य होकर प्रकृतिरूपी खूंटे से बँध जाये, बल्कि हमारा यह कहना है कि वह किसी बात में आँख मींचकर लकीर का फकीर न बने, किन्तु सभी बातों में वह अपनी आजादी-स्वतंत्रता को कायम रक्खे और अपनी विचारशक्ति के अनुसार काम करे और इस प्रकार अपनी आजादी की बदौलत सदैव आगे को बढ़ता रहे। परन्तु अपनी इस आजादी की लगाम को होशयारी के साथ अपने हाथ में सँभाले रहे और उसे जरा भी विचलित न होने दे, नहीं तो मनुष्य की यही आजादी उसे कहीं की कहीं ले जाती है और उसे दुराचरण के गहरे गडढे में गिरा देती है। ❀❀❀

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखकः-जगन्नारायणदेव शर्मा

ब्रह्मचर्य विज्ञान का समर्थन

'स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो
वै स लोकान् ज्ञानवतोऽभिसिध्यति।' -(छान्दोग्यपनिषद्)

जो पुरुष विज्ञान को बड़ा समझ कर, उसकी उपासना करता है, वह निश्चय करके ज्ञानवान् होकर, ज्ञान वाले लोकों को प्राप्त होता है।

हमने अपने इस ग्रन्थ में 'ब्रह्मचर्य' को विज्ञान माना है। कुछ लोग इस पर आपत्ति भी कर सकते हैं। इसलिये हम इस बात को दर्शा देना चाहते हैं कि हमने जो ब्रह्मचर्य को विज्ञान माना है, वह कोई नई बात नहीं है, बल्कि प्राचीन समय में भी लोग ब्रह्मचर्य को विज्ञान मानते और कहते थे। बहुत से ऋषियों ने तो ब्रह्मचर्य को विज्ञान कह के ही पुकारा है। वास्तव में यह बात है भी ऐसी ही।

छान्दोग्यपनिषद् में लिखा है कि सबसे पहले इस ब्रह्म (चर्य) विज्ञान का बोध ब्रह्माजी को हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने इसका उपदेश कश्यप (प्रजापति) को दिया। फिर कश्यप जी ने मनु महाराज को इसका रहस्य बताया, और फिर मनुजी ने समस्त प्रजा को इसकी शिक्षा दी। इस के उपरान्त महामति अरुण ने उद्दालक ऋषि को इसका महत्व बतलाया।

फिर तो इस ब्रह्मचर्य-विज्ञान का सारे संसार में धीरे-धीरे प्रचार बढ़ता गया। पिता और आचार्य लोग अपने पुत्रों तथा प्राणप्रिय शिष्यों को वंश-परम्परा से इसका उपदेश करते गये। और इसके मानने वाले तथा इसके अनुकूल चलने वाले लोग दुःखों से छूट कर परम गति को प्राप्त हुये।

इस सम्बन्ध में एक बहुत ही उत्तम आख्यायिका है। वह इस प्रकार है-

पुण्यश्लोक ऐतरेय ऋषि के तेजस्वी पुत्र महीदास इस 'ब्रह्मचर्य-विज्ञान' के अच्छे ज्ञाता थे। वे अपने शत्रुओं तथा दुष्ट प्रकृति वाले पतित पुरुषों से कहा करते थे कि तुम लोग मेरे ब्रह्मचर्य (विज्ञान) को न जानते हुये, मुझे क्यों कष्ट दे रहे हो। तुम्हारे दुःख देने से मेरी कुछ भी हानि न होगी, वरन् इससे तुम्हारा ही अनिष्ट होगा। क्योंकि मैंने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इस प्रकार इस विज्ञान के दृढ़व्रती महीदास 116 वर्ष तक जीवित रहे, उन्हें किसी बात का भय न था। और उनका तनिक भी अनिष्ट न हो सका। उन्हें कष्ट देने वाले पहले ही नष्ट हो गये। जो पुरुष इन महीदास का अनुकरण करेगा, वह भी दीर्घजीवी होगा।

हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक समय में भी जो पिता या आचार्य, अपने पुत्र या शिष्य को इस सर्व-श्रेष्ठ (ब्रह्मचर्य) विज्ञान का रहस्य समझा देगा, वह अवश्य ही देश और जाति के सुधार का पुण्य प्राप्त करेगा।

ब्रह्मवर्चस और ब्रह्मलोक

ब्रह्मभ्यावर्तै, तन्मेयच्छतुद्रविर्ण,
तन्मे ब्राह्मण-वर्चसम्।" -(अथर्ववेद)

मैं ब्रह्मं (वीर्य) की उपासना करता हूँ। वह मुझे बल दे और वह मुझे ब्रह्मवर्चस प्रदान करें।

जितने महाव्रत हैं, मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह निष्काम-कर्म की अपेक्षा सकाम-कर्म को अधिक पसन्द करता है। यदि फल की आशा न हो, तो अनुष्ठान के पूर्ण होने में भी सन्देह ही रहता है। यही बात ब्रह्मचर्य के साथ में भी घटती है। ब्रह्मचर्य का पालन जिन बड़े उद्देश्यों की सिद्धि के लिये किया जाता हैं, उन्हें हम प्रकट कर देना चाहते हैं। वे इस प्रकार हैं-

अनेक ग्रन्थों में यह बात लिखी है-बहुत से वैदिक मन्त्रों में भी हम देखते हैं कि भाव-भरे मनोहर शब्दों में 'ब्रह्मवर्चस' के लिये प्रार्थना की गई है। मन्वादि स्मृतियों में भी यह बात स्पष्ट रूप से प्रतिपादित की गई है कि ब्रह्मचर्य के पालन का ध्येय ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति है। इसी ब्रह्मवर्चस के लिये कोटि-कोटि महर्षि और मुनीश्वर लोग अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना करते रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मवर्चस को प्राप्त कराने का ब्रह्मचर्य हीएकमात्र साधन था।

अथर्ववेद में 'ब्रह्मवर्चस' के सम्बन्ध के कई प्रभावोत्पादक मन्त्र हैं। उनमें से एक हम यहाँ उद्धृत करते हैं। उससे हमारी यह बात स्पष्ट हो जायगी-

सूर्यस्यावृत मन्वावर्ते, दक्षिणा मन्वावर्त्ते।
सामे द्रविणं यच्छतु, सामे ब्राह्मणवर्चसम्।।

हम प्रकाश-स्वरूप परमात्मा का अनुगमन करते हैं। हम उसकी अनुकूलता की उपासना करते हैं। वह हमें बल प्रदान करे, वह हमें ब्रह्मतेज दे।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि हम सूर्य की भाँति शरीर को प्रकाशित करने वाले ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करते हैं। उसकी सत्ता का अनुगमन करते हैं। वह हमें मनोबल दे-वह हमें ब्रह्मतेज प्रदान करे।

वास्तव में वीर्य ही मनुष्य-शरीर में सूर्य है। इसी के प्रताप से यह प्रकाशित होता है। जिस दिन इस परम प्रकाश का लोप हो जाय, उसी क्षण यह घोर तम से घिर जाता है। अर्थात् वीर्य के बिना शरीर का नाश होना निश्चित है।

ब्रह्मचर्य के पालन से ही मनुष्य को ब्रह्मवर्चस की उपलब्धि होती है। ब्रह्मवर्चस नाम है-आत्म-ज्ञान का। जब तक ब्रह्मवर्चस नहीं सिद्ध होता, तब तक 'ब्रह्मलोक' में आत्मा स्वतन्त्र होकर नहीं पहुँच सकता। अर्थात् एक साधन की सिद्धि हो जाने से दूसरे उद्देश्य की भी सिद्धि होती है।

अब पाठक ब्रह्मवर्चस क्या है, इसे तो समझ गये होंगे। इस पश्चात् इस 'ब्रह्मलोक' का भी थोड़ा परिचय करा देना चाहते हैं।

"तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणनुविन्दते।
तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाँ सर्वेपुलोकेषु कामचारो भवति।।" (छान्दोग्यनिषत्)

ब्रह्मचर्य से ही 'ब्रह्मलोक' की स्थिति है। ब्रह्मचर्य के ही द्वारा ब्रह्मलोक मिलता है। ब्रह्मचारियों का ही ब्रह्मलोक पर अधिकार है, अन्य का नहीं। जो ब्रह्मचर्य युक्त पुरुष हैं, वे सभी लोकों में विचरण कर सकते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि इस शरीर के ही अन्तर्गत 'ब्रह्मलोक' है। ब्रह्मचर्य की निष्ठा से आत्मा को वह अवस्था प्राप्त होती है। जिस ब्रह्मचारी को आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह शरीर के भीतर के दूसरे लोकों में भी पहुँच सकता है। अर्थात् उसका अनुभव सब प्रकार के सद्‌भावों में परिणत हो सकता है।

'ब्रह्मलोक' आत्मा की वह अवस्था है, जिसमें वह परम सुख का अनुभव करता है। इस लोक में पहुँचने पर, उसे किसी प्रकार का दु:ख नहीं मिलता है। 'ब्रह्मलोक' सब लोकों से श्रेष्ठ है। यह सबसे ऊपर मस्तिष्क में है। प्राणों के यहाँ पहुँचने से जीव का मोक्ष होता है। उसे फिर ऐहिक दु:खों से मुक्ति मिल जाती है। इसलिये 'ब्रह्मलोक' का आशय है-परमानन्द।

अब पाठक समझ गये होंगे कि वीर्य-रक्षा '(ब्रह्मचर्य से) ही मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त होता है, और आत्मज्ञान प्राप्त होने पर ही परमानन्द (ब्रह्मलोक) की प्राप्ति हो सकती है। इस अवस्था के प्राप्त होने पर, फिर कुछ प्राप्त करने के लिये शेष नहीं रह जाता।

हमारे विचार से यही 'ब्रह्मवर्चस' और 'ब्रह्मलोक' का मूल रहस्य है। इन दोनों के लिये प्रयत्न करना मनुष्य-जाति का प्रधान ध्येय होना चाहिये। जो लोग अपने जन्म को सार्थक करना चाहें, वे ब्रह्मचर्य रूपी सदुपाय को साधकर 'ब्रह्मवर्चस' और 'ब्रह्मलोक'-'आत्मज्ञान' और 'परमानन्द' को अवश्य प्राप्त करें।

प्राचीन आर्य और ब्रह्मचर्य

मन्ये विधात्रा जगदेक काननम्।
विनिर्मितं वर्ष मिदं सुशोभनम्।।
धर्माख्य पुष्पाणि कियन्ति यत्र वै।
कैवल्य रूपश्च फलं प्रचीयते।।

यह बात सब पर विदित है कि इस देश के निवासी आर्य नाम से विश्व-मण्डल में विख्यात थे। उनकी इस महत्ता का कारण क्या था? उनका सदाचारमय-धर्मनिष्ठ-लोकोपकारी जीवन। वे निरन्तर साधुता-पूर्ण तथा उच्च चरित्र का अभ्यास करते थे। इस बात से वे बहुत उन्नत तथा सद्‌गुण-सम्पन्न थे। उनके जीवन को सुधारने वाला प्रधान साधन यह 'ब्रह्मचर्य' था। इसी ब्रह्मचर्य के ऊपर उनका सामाजिक तथा नैतिक जीवन प्रधानतया अधिष्ठित था, और सारे देश में सुख-शान्ति का अनुपम साम्राज्य हो गया था। पर हाय ! महाभारत के साथ ही आर्यों के सत्सिद्धान्तों का ह्रास होने लग गया। दिन पर दिन आर्यों की सब प्रकार की अवनति होती गई। अन्त में यह दशा हुई कि हम उन्हीं की एक मात्र सन्तान, उनके आदर्शों के शिखर से अनाचार के कूप में गिर गये। आर्यों के उन्नत चरित्र के सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में सुसम्मतियाँ प्रकट की हैं। उनके देखने से हमें पूर्ण रूप से अनुमान हो जाता है कि कुछ ही दिन पहले, स्वदेशी शासन में हम, कितने गौरवान्वित तथा उच्च थे। हमारी ब्रह्मचर्य की प्रणाली

ज्यों-ज्यों अवनत होती गई, त्यों-त्यों जाति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अवनति भी बढ़ती ही गई।

आर्यों के विषय में कहा गया है कि वे बड़े ऊँचे, हृष्ट-पुष्ट और पराक्रमी थे। उनका वर्ण गौर, शरीर तेजस्वी, उन्नत वक्षस्थल और दिव्य मुख मण्डल था। बड़े नेत्र और लम्बी भुजायें थीं। युद्ध में शूरता दिखलाते थे। धर्म-पालन में दृढ और ईश्वर के परम भक्त थे। उनकी स्त्रियाँ सदाचारिणी, पति-भक्ता तथा देवी-स्वरूपा थीं।

ऊपर की बातों के अवलोकन से हमारे मन में यह स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि वे ऐसे क्यों थे, और आज हम उन्हीं के वंशज होकर, इस दुर्गति को क्यों प्राप्त है? इसका उत्तर यह सूझता है कि इन सब अवनतियों का प्रधान कारण ब्रह्मचर्यहीनता है। ब्रह्मचर्य की साधना से आर्यों का प्राचीन समय में उत्थान हुआ था। और उसके विपरीत चलने से ही हमारा अध:पात हुआ। यदि उसी ब्रह्मचर्य-प्रथा को पुनर्जीवित कर दिया जाय, तो हमारे अनुमान से आर्यों की दशवीं पीढ़ी में पुन: आर्यों के वंशधर अपनी प्राचीन अवस्था को प्राप्त कर सकेंगे।

अब हम इस देश के प्राचीन आर्यों के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ विदेशी विद्वानों के मतों का संग्रह करते हैं। इन विद्वानों में प्राय: सभी भारतवर्ष में आकर यहाँ की अवस्था अपनी आँखों देख गये हैं, और अपने देश में जाकर अपने ग्रन्थों में यहाँ का विस्तृत वर्णन किया है, तथा जो कुछ कहा है, उससे उनकी निष्पक्षता प्रकट होती है-

"धर्म तथा सभ्यता के प्राचीनत्व के विचार से पृथ्वी की कोई भी जाति आर्य-जाति के समकक्ष नहीं।"**-जोर्णस**

"सच्चरित्रता वा सत्यता के लिये आर्य-जाति चिरकाल से विश्व में प्रसिद्ध है।"**-ह्युनसांग**

"आर्यों में दासत्व-भाव बिलकुल नहीं। उनकी स्त्रियों में पातिव्रत और पुरुषों में वीरत्व असीम है। साहसिकता में आर्यजाति पृथ्वी भर की अन्य जातियों में श्रेष्ठ है-परिश्रमी, शिल्पी तथा नम्र प्रकृति है।"**-मेगास्थनीज**

"जिसे पृथ्वी पर स्वर्ग कहने में भी मुझे आनन्द होता है। यदि कोई मुझसे कहे कि किस देश के आकाश के नीचे मनुष्य के अन्त:करण की पूर्णता प्राप्त हुई, तो मैं कहूँगा कि वह देश भारतवर्ष है।"-मैक्समूलर

"हिन्दू-धर्म के सामने पाश्चात्य सभ्यता अत्यन्त हीन ज्ञात होती है। ज्ञान की कुंजी सदा से हिन्दुओं के हाथ में रही है।" **-मिसेज एनीबेसेन्ट**

ऊपर की सम्मतियों के अतिरिक्त इस देश के विद्वानों के भी अनेक सद्भाव हैं, जो यहाँ पर अनावश्यक समझ कर नहीं दिये गये। क्योंकि स्वदेशी लोग अपने देश का पक्षपात भी थोड़ा बहुत कर सकते हैं, पर विदेशी लोगों को इससे क्या काम! अत: इस सम्बन्ध में उन्हीं के विचार मूल्यवान हो सकते हैं।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे-

ब्रह्मचर्य

लेखकः-पण्डित सत्यव्रत

गन्ध

नासिका तथा जननशक्ति में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राचीन रोम के लोग इस सम्बन्ध से भली प्रकार परिचित थे, वर्तमान काल में भी पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विश्वास पाया जाता है। यौवन काल में लड़कों तथा लड़कियों को बहुत नकसीर फूटने का कारण नासिका तथा जननेन्द्रिय का सम्बन्ध ही है। इसी समय नासिका के दूसरे रोग भी उठ खड़े होते हैं। अनेक बार नकसीर का जनन-प्रदेश में बर्फ से ठण्डक पहुंचा कर बन्द किया गया है। पुरुषों तथा स्त्रियों में हस्त-मैथुन अथवा सम्भोग के बाद अक्सर नकसीर फूटती देखी गई है। कई बार वीर्य-क्षय से नासिका द्वार का अवरोध तथा छींक आना आदि देखा गया है। कई लेखकों ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। एलिस महोदय एक स्त्री का उल्लेख करते हैं जिसमें उपर्युक्त कथन पूरा-2 घटता था। फीरी ने एक स्त्री के विषय में लिखा है जिसे विवाह के बाद नाक की बीमारियों की लगातार शिकायत रहने लगी थी। जे0 एन0 मैकेन्जी ने अनेक दृष्टान्त देते हुए लिखा है कि नवविवाहित पति-पत्नी में जुकाम के बहुधा पाये जाने का मुख्य-कारण भी यही है।

इस गिरावट के जमाने में परमात्मा की प्रत्येक वस्तु का दुरुपयोग हो रहा है। बाजार तरह-2 के गन्धों से भरा हुआ है। कस्तूरी का बहुत प्रयोग दिखाई देता है। पशुओं के शरीर से बनी हुई गन्धें उत्तेजक होती हैं अतः जंगली लोगों में उनका बहुत प्रचार था परन्तु ज्यों-2 मनुष्य सभ्य होता जाता है। त्यों-2 पशुओं के शरीर की गन्धों के स्थान में फूलों की गन्धों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। फूलों से जो गन्ध बनते हैं वे भी मनुष्य की कुवासनाओं को उद्‌बुद्ध करते हैं क्योंकि उनकी रचना में वही पदार्थ होते हैं जो कस्तूरी आदि पशुओं के गन्धों में होते हैं। पशुओं से अथवा फूलों से दोनों से ही निकाला हुआ गन्ध सर्वथा समान है और दोनों के दुष्परिणाम ब्रह्मचर्य के लिए भयंकर हैं।

एलिस महोदय ने 'जरनल आफ साइकौलोजिकल मैडिसिन' में से उद्धरण दिया है जिसका आशय यह है कि बनावटी फूलों के गन्धों का प्रयोग आचार के लिए अत्यन्त हानिकर है और सदाचार का जीवन व्यतीत करने के लिए फूलों से बचना ही उत्तम है। इसी कारण प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य के नियमों का उपदेश करते हुए आचार्य गन्ध-फूल-माला आदि उत्तेजक पदार्थों से बचने का आदेश करता था। आजकल के स्कूलों तथा कालिजों के विद्यार्थी गन्धों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि यह ब्रह्मचर्य के नियमों के प्रतिकूल है। सादा तथा पवित्र जीवन ही आदर्श जीवन है।

स्पर्श

येन महोदय अपनी पुस्तक 'इमोशन्स एण्ड विल' में लिखते हैं कि 'स्पर्श', प्रेम का आदि और अन्त है'। स्पर्श मनोभावों को जागृत करने का सबसे बड़ा साधन है इस बात को भारत के ऋषि, फीरी, मैन्टेगेजा, पैन्टा तथा एलिस सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं। स्पर्श का मनुष्य को उत्तेजिक करने में इतना असर है कि कई पश्चिमीय लेखकों की सम्मति में वर्तमान सभ्यता की बढ़ती के साथ-2 साधारण से स्पर्श को भी बुरा समझा जाने लगेगा। निस्सन्देह सभ्यता में ऐसे युग का आना सभ्यता की गिरावट का ही सूचक होगा परन्तु यदि ऊँची दृष्टि से देखने पर मनुष्य उन्नति के स्थान में अवनति ही कर रहा हो तब ऐसे युग का आ पहुंचना आश्चर्य की बात भी नहीं।

डॉ0 ब्लौच अपनी पुस्तक 'दि सैक्षअल लाइफ आफ अवर टाइम' के 30 पृष्ट पर लिखते हैं-

''स्पर्श से मानसिक विकार उत्पन्न हो जाने का मुख्य कारण यह है कि त्वचा के संवेदना-तन्तुओं की रचना तथा उत्पादक अंगों के तन्तुओं की रचना एक ही पदार्थ से हुई है। इसीलिए प्राणिमात्र के सब अवयवों की अपेक्षा त्वचा का असर मानसिक दुर्भावों को जागृत करने में तत्काल होता है। जो व्यक्ति, स्पर्श की भयानक आंधी से बच जाता है वह इसके दुष्परिणामों से भी बच जाता है जो उसे अन्धा बना देने वाले हैं।''

बालक तथा बालिकाओं में प्रायः एक दूसरे को गुदगुदी करने की आदत देखी जाती है। गुदगुदी से त्वचा के उत्तेजन द्वारा मनोविकृति का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। बच्चों को इस आदत से बचाना चाहिए। अनावश्यक स्पर्श का कभी न होने देना ही ब्रह्मचर्य का नियम है।

कोमल बिस्तरों का भी पर बुरा असर होता है। बच्चों के विषय में 'दि सैक्षुअल लाइफ आफ दि चाइल्ड' पुस्तक के लेखक ने बहुत अन्वेषण की है। उनका कथन है कि बच्चों को गद्देदार बिस्तरों पर सोने देने से उनके हस्त-मैथुनादि अनेक पैशाचिक दुर्व्यसन सीखने की सम्भावना है। इसीलिए ब्रह्मचर्य के नियमों में 'उपरि शैयां वर्जय' कोमल, गद्देदार बिस्तरों पर सोने का निषेध किया गया है।

एलिस महोदय अपनी पुस्तक 'मौडेन्टी, सैक्षुअल प्रिकौसिटी आटो इरौटिज्म' के 175 पृ0 पर लिखते हैं-

''कई लेखकों ने लिखा है कि घोड़े की सवारी ब्रह्मचर्य के लिए ठीक नहीं है। घोड़े की सवारी से वीर्य-स्खलित हो जाने का ज्ञान कैथोलिक पादरियों को भी था। पुरुषों तथा स्त्रियों में रेलगाड़ी की गति से भी दुष्प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, यह बहुतों का अनुभव है।''

शास्त्रों में, ब्रह्मचारी को उपदेश देता हुआ आचार्य कहता है-'गववाश्वहस्त्युष्टादि यानं वर्जय'-बैल, घोड़े, हाथी, ऊंट आदि की सवारी मत करो।' कई जगह तो सवारी मात्र का निषेध किया गया है। ब्रह्मचारी को जिस तरह से भी हो सके ब्रह्मचर्य के खण्डित होने से बचाया जाय, यही भाव प्राचीन गुरुओं के मस्तिष्क में काम करता रहता था। स्पर्श के विषय में लिखा है-

'अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्य स्खलनं बिहाय वीर्य शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव-'इन्द्रिय स्पर्श कभी न करते हुए वीर्य रक्षा करो।'

इन उपदेशों को पढ़कर प्राचीन गुरुओं और आधुनिक गुरुओं में भेद स्पष्ट दीख पड़ता है। क्या आज गुरुकुलों के आचार्यों को छोड़कर किसी स्कूल अथवा कालिज का प्रिन्सिपल जनता के सन्मुख खड़े होकर अपने शिष्य को यह उपदेश देने का साहस कर सकता है कि 'बालक! इस संस्था में वीर्य-रक्षा करना तेरे जीवन का लक्ष्य होगा'? नहीं! शिक्षा का इसे उद्देश्य नहीं समझा जाता। पढ़ा लिखाकर रोटी कमाने लायक बना देने में स्कूल का काम खतम हो जाता है। प्राचीन गुरुकुलों का उद्देश्य ही पृथक् होता था। बालक को संयमी, सदाचारी बनाना उनका ध्येय था। पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं परन्तु आत्मिक उन्नति को सम्पूर्ण शिक्षा का लक्ष्य समझा जाता था। यह भेद प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षकों के नामों में भी दीख पड़ता है। आधुनिक शिक्षक का नाम 'हेड मास्टर' या प्रिंसिपल' का अर्थ है-मुखिया'। जिन्हें अपने रोब जमाने से छुट्टी न मिलती हो, जो, 'मालिकपन' और 'मुखियापन' के विचारों के नीचे दबे हुए हों वे आचार की देख-रेख कब करेंगे? प्राचीन शिक्षक के लिए शब्द ही 'आचार्य' का व्यहृत होता था। शिक्षक मुखिया (गुरु) अवश्य था परन्तु 'आचार्य' अर्थात् सदाचार की शिक्षा देना उसका प्रधान कर्त्तव्य था।

रस

रस में कई विषय मिले हुए हैं। गन्ध, स्पर्श तथा रूप का भी इसमें समावेश है। गन्धादि विषयों का सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकर है अतः रसीले पदार्थों का सेवन हानिकर स्वतः सिद्ध हो जाता है। शराब, चाय, काफी, तम्बाकू तथा मिठाइयों का व्यसन सभ्यता की उन्नति (?) के साथ-2 उन्नत होता चला जा रहा है। लोग पेटू होते जा रहे हैं। इन सबका ब्रह्मचर्य पर बहुत बुरा असर होता है।

शराब काक जीवन के सार-तत्वों को बिगाड़ने में जो हाथ है उसे दर्शाने के लिए किसी डाक्टर का प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। शराबी का नशे में अपने को भूलकर सदाचार के क्षेत्र से कोसों दूर चला जाना रोज की की घटना है। हम इसके विषय में कुछ न लिखना ही सब कुछ लिख देने के बराबर समझते हैं। चाय तथा काफी के भयंकर दुष्परिणामों से सर्वसाधारण परिचित नहीं है। हमें पूर्ण विश्वास है कि अनेक व्यक्ति चाय, काफी के बुरे परिणामों से अपरिचित होने के कारण ही उनका उपयोग करते हैं। यथार्थ बात के ज्ञात होते ही वे इन्हें छोड़ने के लिए उद्यत हो जायेंगे। डॉ0 ब्लौच का कथन है-

''चाय, काफी तथा मौरफीन को अधिक मात्रा में लेने से मनुष्य नपुंसक हो जाता है। डयूपी ने परीक्षण करके देखा है कि कई लोग जो दिन में 5-6 बार काफी पीते थे नपुंसक हो गये। काफी छोड़ देने से वे ठीक हो जाते और शुरु कर देने से फिर नपुंसक हो जाते थे।''

तम्बाकू के विषय में डॉ0 कैल्लौग 'प्लेन फैक्टस' में लिखते हैं-

''मनुष्य के आधार पर तम्बाकू का क्या असर होता है इस बात को बहुत थोड़े लोग जानते हैं। बचपन में इस दुर्व्यसन के लग जाने से शीघ्र ही कुवासनाएं प्रदीप्त हो उठती हैं और कुछ ही वर्षों में

सदाचारी तथा पवित्र युवक को काम-वासनाओं का ज्वालामुखी बना देती हैं। उसके अन्त:करण की धधकती हुई कुवासनाओं की ज्वालाओं से अश्लीलता तथा दुराचार के काले धुएं निकलने लगते हैं। देर तक तम्बाकू का प्रयोग करते रहने से नपुंसकता आ पहुंचती है।" मिठाइयों का शौक भी मनुष्य की कुप्रवृत्तियों का कारण और परिणाम दोनों ही है। डॉ0 ब्लौक 'सैक्षुअल लाइफ आफ अवर टाइम' के 34 पृ0 पर कहते हैं-

"मिठाइयों के लिए शौक का कुवृत्तियों के साथ सम्बन्ध है। जो बच्चे मिठाइयों के बहुत शौकीन होते हैं उनके गिरने की बहुत अधिक सम्भावना बनी रहती है और वे दूसरे बच्चों की अपेक्षा हस्त-मैथुनादि कुकर्मों की तरफ अधिक झुकते हैं।"

पेटूपन आजकल की नई बीमारी है। इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि वर्तमान युग में भूख से इतने लोग नहीं मरते जितने पेटूपन से मरते हैं। वीर्यरक्षा न करने का पेटूपन अवश्यम्भावी परिणाम है। दुराचारी व्यक्ति का रसनेन्द्रिय पर वश नहीं रहता। पेट भरे रहने पर भी उसकी भूख नहीं मिटती और वह सदा आवश्यकता से अधिक खा जाता है। उपवास करना उसके लिए असम्भव सा जान पड़ता है। डॉ0 कैल्लोग लिखते हैं कि पेटूपन सदाचार का शत्रु है। अधिक खा जाने से वीर्य नाश होना निश्चित है।

ब्रह्मचर्य के प्राचीन नियमों में इस सिद्धान्त को प्रधानता दी गई थी कि हमारा मन भोजन से बनता है। उपनिषद् में लिखा है-"अन्नमयं हि सौम्य मनः"। सात्विक आहार के लिए जगह-2 प्रेरणा की गई है। ब्रह्मचारी को गुरुकुल में प्रविष्ट करता हुआ आचार्य कहता-'**तैलाभ्यंगमर्दनाल्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व**'। 'बहुत खट्टे, तीखे, नमकीन पदार्थ मत खाना' -राजसिक भोजन से कुसंस्कार जाग उठते हैं। बहुत बार भोजन करने का निषेध करते हुए सायं प्रातः दो ही बार ब्रह्मचारी के लिए भोजन का विधान किया गया है। मनुस्मृति में ब्रह्मचर्य के प्रकरण में लिखा है-

"सायं प्रातर्दिजातीनामशनं स्मृतिनोदितम्।
नान्तरे भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमोविधिः।।
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यचातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।"

❋❋❋

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल चिन्तन)	प्रेस में
चार मित्रों की बातें	प्रेस में
गृहस्थ जीवन रहस्य	प्रेस में
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	प्रेस में

शोक सन्देश

अग्रवाल श्री सुरेशचन्द जी आर्य सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा व श्री विरजानन्द ट्रस्ट मथुरा के अनन्य सहयोगी के अनुज श्री महेशचन्द जी की धर्मपत्नी के आकस्मिक निधन पर तपोभूमि परिवार की ओर से हार्दिक शोक संवेदना व भावभीनी श्रद्धांजलि।

देशभक्ति के प्रेरक कवित्त

रचियताः रोहित आर्य

(1)

जुल्फों की डोरियों के पाश में बधूँगा नहीं,
भारती की वन्दना के गीत ही मैं गाऊँगा।
हास-परिहास वाली बात सारी छोड़कर,
देश की दशा पै निज कलम चला ऊँगा।
प्रेम प्यार की तो बातें आती नहीं रास मुझे,
राष्ट्र जागरण का ही कार्य मैं उठाऊँगा।
ना गुलाबी गाल ना मैं काले-काले बाल लिखूँ,
छोड़ के श्रृंगार को मैं आग बरसाऊँगा॥

(2)

अपने घरों के जले दीप को बुझा करके,
रोशनी को लाने हेतु आफताब धरते।
ख्वाब में भी गर हमने दिया कोई वचन,
खुद को मिटाके हम पूरा ख्वाब करते।
शेखर, भगत, बिस्मिल का लहू रगों में,
फाँसियों को चूम कर इंकलाब भरते।
राणा व शिवा से सिंह पुरुषों के वंशज हैं,
हम शौक से हैं मृत्यु का चुनाव करते॥

(3)

भारती की मुक्ति हेतु जिन रण बाँकुरों ने,
तन-मन वारा और वारा धन धाम है।
रक्त को बहाते हुए शीश को कटाते हुए,
लड़े अन्त तक कभी लिया न विराम है।
राष्ट्रकी स्वतन्त्रता को मृत्यु का वरण कर,
जिन्होंने लिखाया बलिदानियों में नाम है।
शेखर, सुभाष, अशफाक व भगतसिंह,
मस्तक झुका के उन वीरों को प्रणाम है॥

(4)

राष्ट्र की स्वतन्त्रता को बाँध के कफन कूदे,
मात-पिता छोड़े और घर बिसराया था।
लोगों ने था उनको तो पागल भी कहा यारो,
किन्तु निज लक्ष्य से न ध्यान भटकाया था।
सर को कटाने की तमन्ना लेके भिड़ गये,
वन्दे मातरम् गान फाँसी पर गाया था।
गोरों से दिलाने हेतु भारती को मुक्ति तब,
लाखों युवकों ने शीश अपना कटाया था॥

(5)

छोटी सी उमर में ही जिसने गढ़ा था शौर्य,
सुनी पन्द्रह बेंत वाली हमने कहानी वो।
क्रूर अंग्रेज जिसे सुनते ही काँप जाते,
भारतीय युवकों के वीरता के पानी को।
राष्ट्र की स्वतन्त्रता को जिसमें उबाल रहा,
वीरों में थी बही उस रक्त की रवानी को।
जीते जी फिरंगी सरकार जिसे छू न सकी,
धन्य चन्द्रशेखर आजाद की जवानी थी॥

(6)

दिल को चुराने या लुभाने की क्या बात करूँ,
अंखियों में शेष अभी वीरता का जल है।
भारती का गान मेरी पूजा और साधना है,
दिल में भी सिर्फ राष्ट्रभक्ति की अनल है।
भारत की मिट्टी से पवित्र नहीं चीज कोई,
गंगा-यमुना की होती जहाँ कल-कल है।
पाठ सभ्यता का हमने पढ़ाया विश्व को था,
दुनियाँ में हमने मचाई हलचल है॥

(7)

राम और कृष्ण, वीर शिवा व प्रताप वाले,
लहू का उबाल कभी रुकने न पायेगा।
शेखर, भगत, बिसमिल से हमें मिला जो,
वन्दे मातरम् का सन्देश दिल गायेगा।
निज मातृभूमि की सुरक्षा हेतु दिया था जो,
पावन पुनीत बलिदान यहाँ पायेगा।
सौ करोड़ जनता के तन-मन में बसा जो,
लाड़ला तिरंगा कभी झुकने न पायेगा॥

(8)

शीश दान करेन को माँ के कष्ट हरने को,
रणबाँकुरों ने क्रान्ति पथ अपनाया था।
काटने गुलामी वाली बेड़ियाँ निकल पड़े,
घर-बार छोड़ा माँ का प्यार बिसराया था।
फाँसी चढ़ते गये थे और लड़ते गये थे,
निज लक्ष्य से न कभी ध्यान भटकाया था।
गोरे आताताइयों की नाक में नकेल डाली,
बलिदान दे के देश मुक्त करवाया था॥

(9)

जीते जी फिरंगी सरकार के न हाथ आऊँ,
ऐसा था संकल्प जो उठाया उस वीर ने।
उसने किया था एक वादा कभी खुद से जो,
सारी उम्र उसको निभाया उस वीर ने।
उसके तो नाम से ही काँपते फिरंगी रहे,
ऐसी एक आँधी को चलाया उस वीर ने।
आजाद तो जिन्दा कभी पकड़ा नहीं गया था,
मस्तक न माता का झुकाया उस वीर ने॥

(10)

खो गई स्वतन्त्रता को वापस ले आने का ही,
उसके दिमाग पै सवार हुआ भूत था।
गोरों को उखाड़ने पछाड़ने का जो विचार,
पत्थर सा दृढ़ लोहे जैसा मजबूत था।
जिनका न सूर्य कभी अस्त यहाँ हो रहा था,
उन गोरों के लिए बना वो यमदूत था।
जिसके तो नाम से ही अंगरेज़ काँप जाते,
शूरमा भगत वो तो सिंहनी का पूत था॥

(11)

जलियाँ वाले बाग की शहादत के बदले को,
लेने का विचार बड़ा कठिन कदम था।
जान बूझकर बस मौत को बुलवा था ये,
नहीं किसी भाँति उससे ये कभी कम था।
किन्तु मान लिया और बस ठान लिया यही,
इसलिए बना डायर के लिए यम था।
लन्दन में जाके सीना ठोक दिया,
भारती का पुत्र वीरवर् वो ऊधम था॥

(12)

सती अनुसुइया सीता सावित्री की बेटियाँ हो,
रक्त बह रहा रगों में दुर्गा भवानी का।
अपने सतीत्व हेतु अंगारों में कूद पड़ी,
याद करो इतिहास जौहर कहानी का।
मातृभूमि रक्षा हेतु छोड़ा मोह-माया-काम,
नाम आता याद पन्ना और हाड़ा रानी का।
शत्रुओं के छक्के भी छुड़ाती रहीं युद्ध में हो,
तुमने दिखाया शौर्य झाँसी वाली रानी का॥

(13)

क्रान्तिकारियों का बलिदानी इतिहास है जो,
तन-मन, अंग-अंग भरता उमंग था।
जिसे सुनकर रक्त में उबाल आने लगे,
बार-बार भर जाता दिल में तरंग था।
सलमान सिंह के समान जो दहाड़ता था,
झड़ गया उसका दिखावटी जो रंग था।
सिर्फ पाँच साल कैद की सजा को सुनकर,
रो उठा वहीं पै जो कि वीर था दबंग था॥

(14)

शीश को उतारने का काम तलवार का है,
कट नहीं सकता है कभी कोई फूल से।
भारती के आँचल पै डालेगा कुदृष्टि कोई,
काट देंगे हम उसे उसके ही मूल से।
हमें ललकारने का किसी ने प्रयास किया,
छेद देंगे हम उसका बदन शूल से।
उसके न हाथ पाँव शीश का पता चलेगा,
किसी ने कदम रखा अब यदि भूल से॥

-(शेष अगले अंक में)

हुआ। बड़े ही भाव विह्वल वातावरण में मुखाग्नि दी गई। स्वामी रामदेव जी व उनके सहयोगियों ने और मुख्यमंत्री हरियाणा व उनके मन्त्रिमण्डल के साथियों ने श्रद्धा सहित सामग्री समर्पित की। इस अवसर पर पूर्व मुख्यमंत्री हरियाणा श्री भूपेन्द्रसिंह हुड्डा, कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुये। और श्रद्धा सुमन अर्पित किये। इण्डियन नेशनल लोकदल के प्रतिनिधि के रूप में पूर्व मुख्यमंत्री ओमप्रकाश चौटाला के पुत्र श्री अभय चौटाला ने आकर अपने श्रद्धा सुमन समर्पित किये। श्रद्धेय आचार्य जी के अनन्य भक्त गुरुकुल कुरुक्षेत्र के पूर्व प्राचार्य एवं वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री आचार्य देवव्रत जी ने भी उपस्थित होकर श्रद्धा प्रकट की। अन्त्येष्टि का प्रारम्भ 1 बजे प्रारम्भ हुआ। और देखते ही देखते श्रद्धेय आचार्य जी का शरीर अग्निसात् होकर पंचतत्वों में विलीन हो गया।

इसके बाद आचार्य जी को श्रद्धांजलि देने का क्रम प्रारम्भ हुआ। स्वामी रामदेव जी महाराज ने अपने गुरुवर को श्रद्धांजलि देने की व्यवस्था का भार संचालन द्वारा स्वयं संभाला। श्रद्धांजलि देने वालों में आचार्य बालकृष्ण जी, माननीय मुख्यमंत्री मनोहरलाल खट्टर, पूर्व मुख्यमंत्री भूपेन्द्रसिंह हुड्डा, अभय चोटाला, शिक्षा मंत्री रामविलास शर्मा, वित्तमंत्री कैप्टन अभिमन्यु, सांसद स्वामी सुमेधानन्द सीकर (राजस्थान), आचार्य देवव्रत जी राज्यपाल हिमाचल प्रदेश, स्वामी कर्मवीर जी, आचार्य अखिलेश्वर जी, आचार्य ज्ञानेश्वर जी, मंत्री सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा व मंत्री आर्य उपप्रतिनिधि सभा हरियाणा आदि ने दी। अन्त में सबने मिलकर यह संकल्प लिया कि हम सब मिलकर आचार्य जी द्वारा छोड़े गये विभिन्न प्रकल्पों के कार्यों को पूरा करेंगे। स्वामी रामदेव जी महाराज ने आने वाले सभी लोगों का आभार प्रकट किया और श्रद्धेय आचार्य प्रद्युम्न जी द्वारा प्रेषित श्रद्धांजलि के रूप में भेजे पत्र को पढ़कर सुनाया। अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए स्वामी रामदेव जी ने कहा कि आज मैं जो कुछ भी हूँ पूज्य आचार्य जी की कृपा का ही परिणाम है। उन्होंने कहा कि श्रद्धेय आचार्य जी ने हमें व्याकरण के साथ आचरण भी सिखाया। उन्होंने कहा कि आचार्य जी वाणी नहीं कर्म से बोलते थे। वे अपने प्रवचनों से लोगों के श्रद्धा भाजन बने। उनका त्याग, तप संघर्ष समर्पण विद्या सब कुछ अनुपम था। उनकी ईश्वर भक्ति का उदात्त स्वरूप आज विरले लोगों में ही दिखाई देगा। उनकी सीधे सरल शब्द किसी को सुझाव के लिये दिये गये आदेश का काम करते थे। उनकी विनम्रता के आगे अच्छे-अच्छे अहंकारियों का सिर झुक जाता था। वे स्वभाव से फक्कड़ सन्त थे पर विद्या की दृष्टि से अत्यन्त व्यवस्थित थे। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू पर उनका अद्भुत समान रूप से अधिकार था। उनकी करुणा प्राणिमात्र के प्रति अनुकरणीय थी। गो माता के प्रति उनकी अनन्य भक्ति से जन-जन परिचित था। स्वामी जी ने कहा कि हम तो पूज्य गुरुवर के आदेशों उपदेशों के पालन करने में संकल्पबद्ध सदा से ही हैं। आशा है आया हुआ प्रत्येक श्रद्धालु अपने जीवन में पूज्य आचार्य जी को स्थान देकर अपना परिवार और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सच्ची श्रद्धांजलि देंगे। अन्त में आर्य उपप्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान आचार्य श्री विजयपाल जी ने सभी का धन्यवाद करते हुए आचार्य जी के पदचिन्हों पर चलने की शपथ लेकर सभा के समापन की घोषणा की। और श्रद्धांजलि के लिए गुरुकुल कालवा जो आचार्य जी की तपोभूमि रही है वहाँ सभी आर्यों को आने का निर्देश दिया। शान्तिपाठ के साथ भारी मन के साथ सभी आर्यों ने अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया। ❀❀❀

'तपोभूमि' फरवरी 2016 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

नवनिर्मित आचार्य प्रेमभिक्षु भवन सत्य प्रकाशन का उद्घाटन करते हुए पूज्य आचार्य श्री बल्देव जी महाराज एवं श्री अग्रवाल सुरेशचन्द्र जी आर्य उप प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

श्रद्धेय आचार्य बल्देव जी महाराज का स्वागत करते हुये ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. सत्य प्रकाश जी अग्रवाल व मंत्री श्री बृजभूषण जी अग्रवाल

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2016 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल– 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित